Digitization by eGangotri-South Center

18.3 CM

ॐ

श्रीमच्छङ्कराचार्यकृत

शतश्लोकी

हिन्दी-अनुवादसहित

अनुवादक

मुनिलाल

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

मूल्य [redacted] आना
सं० १९९२ प्रथम संस्करण २२५०
सं० १९९५ द्वितीय संस्करण ३०००

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

निवेदन

जिस चिद्घनमूर्ति आत्मतत्त्वमें यह सम्पूर्ण प्रपञ्च रज्जुमें सर्पके समान प्रतीत हो रहा है उसको अनुभव करना ही इस मनुष्यजन्मका परम लाभ है। संसारमें स्थावर-जंगम जितने प्राणी हैं वे सभी एकमात्र निरतिशय आनन्दकी ही खोजमें हैं; उस परमानन्दकी उपलब्धिके लिये ही उनमेंसे कोई तो ऐहिक भोगोंको तिलाञ्जलि देते हैं और कितने ही उसीके लिये भटकते हुए भ्रमवश निर्बाध विषय-सुखकी व्यर्थ चेष्टामें प्रवृत्त होकर उत्तरोत्तर उससे दूर होते जाते हैं। इस प्रकार यद्यपि आस्तिक-नास्तिक एवं अज्ञ-तज्ज्ञ सभी प्राणी एक ही लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये सयत्न हैं, तथापि अपनी-अपनी प्रवृत्तिके अनुसार उन्हें सर्वथा विभिन्न फलोंकी प्राप्ति होती है।

इस तरह यद्यपि विभिन्न प्राणियोंकी भिन्न-भिन्न गतियाँ देखी जाती हैं तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे सब होतीं आत्मप्रसादके ही लिये हैं—उन सबका उद्देश्य यही होता है कि अपनेको शान्ति प्राप्त हो। भक्तकी भक्ति, ज्ञानीका ज्ञान, दानीका दान, वीरका आत्म-बलिदान और विषयीकी विषयप्रवृत्ति ये सब-की-सब आत्मार्थ ही होती हैं; इस प्रकार सारे व्यवहारका एकमात्र केन्द्रस्थान आत्मा ही है। अतः आत्मानन्द ही निरतिशय आनन्द है और आत्मज्ञान ही उसकी प्राप्ति-का एकमात्र साधन है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें उस आत्मतत्त्वका ही निरूपण किया गया है। यह भगवान् शंकराचार्यकी प्रसन्नगम्भीर लेखनीकी एक उत्कृष्ट रचना है। इसकी शैली अत्यन्त गम्भीर और भावपूर्ण है। इसके अधिकांश श्लोकोंमें तो श्रुत्यर्थका ही समावेश किया गया है। इसमें थोड़े-से शब्दोंमें बहुत-कुछ कह दिया गया है तथा प्रक्रियाके विशेष विवेचनमें न पड़कर आत्मतत्त्व और ब्राह्मीस्थितिका ही प्रधानतया निरूपण किया गया है। यह ग्रन्थ जिज्ञासुओंके लिये बहुत उपयोगी है। इसपर श्रीआनन्दगिरिस्वामीकी संस्कृतटीका है तथा हिन्दीमें भी श्री० पं० रामावतार विद्याभास्करने एक विशद व्याख्या लिखी है। इसके अनुवाद और संशोधनमें इन दोनों ग्रन्थोंसे सहायता ली गयी है; अतः मैं उक्त महानुभावोंका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मुनिलाल

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–गुरुमहिमा	··· ५
२–आत्मानात्मविवेक	··· ६
३–आत्माकी परमप्रियता	९
४–अन्तर्निष्ठ मुमुक्षुका लक्षण	११
५–दो प्रकारका वैराग्य	··· १२
६–कामादिका त्याज्यत्व	··· १४
७–देव और अतिथिपूजन	··· १६
८–जगत्की ब्रह्मरूपता	··· १७
९–मायानिरूपण	··· १९
१०–जीव और ईश्वरका स्वरूप	२१
११–जीव प्रपञ्चमें कैसे फँसता है	··· २३
१२–आवरणशक्ति किसको ढकती है	··· २४
१३–जाग्रति भी स्वप्नवत् है	··· २४
१४–ज्ञानप्राप्तिमें वैराग्यकी प्रधानता	··· ··· २९
१५–जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति	··· ··· ३०
१६–ब्रह्म ही सारवस्तु है	··· ३३
१७–उपाधिसे ब्रह्मकी असंगता	··· ··· ३५
१८–ब्रह्म ही सबका प्रकाशक और आश्रय है	··· ३६
१९–सब ब्रह्मरूप ही है	··· ४०
२०–आनन्दमय कोशका स्वरूप	··· ··· ४३
२१–सुषुप्ति और जीवन्मुक्तिका भेद	··· ··· ४६
२२–आत्मानन्दकी उत्कृष्टता	४६
२३–स्वप्नविषयक शंका	··· ४९
२४–शंकाका परिहार	··· ५०
२५–संसारकी स्वप्नतुल्यता	··· ५२
२६–कर्मफलदाता ईश्वर ही है	५३
२७–आत्मा ही सबका प्रकाशक और प्रेरक है	··· ५५
२८–जीवन्मुक्तका स्वरूप	··· ५७
२९–साक्षी साक्षी ही है	··· ५८
३०–जीवन्मुक्तकी स्थिति	··· ६०
३१–भगवच्चिन्तनका विधान	६२
३२–स्वात्माभिवन्दन	··· ६३

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

शतश्लोकी

यस्यानुग्रहदृष्ट्येह मन्दप्रज्ञोऽपि पूज्यते ।
तं वन्दे विदुषां वन्द्यं पूर्णानन्दं गुरुं हरिम् ॥

गुरुमहिमा

दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः
स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम् ।
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्ये
स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वालौकिकोऽपि ।१।

इस त्रिलोकीमें ज्ञानदाता सद्गुरुकी कोई उपमा नहीं देखी गयी । यदि उन्हें पारसकी उपमा दी जाय तो वह लोहेको केवल सोना बना देता है—उसे पारस नहीं बनाता । किन्तु सद्गुरु तो अपने युगल चरणोंका आश्रय लेनेपर शिष्यको अपने ही समान बना लेते हैं । इसलिये वे उपमारहित और अलौकिक हैं ॥ १ ॥

यद्वच्छ्रीखण्डवृक्षप्रसृतपरिमलेनाभितोऽन्येऽपि वृक्षाः
शश्वत्सौगन्ध्यभाजोऽप्यतनुतनुभृतां तापमुन्मूलयन्ति ।
आचार्याल्लब्धबोधा अपि विधिवशतः संनिधौ संस्थितानां
त्रेधा तापं च पापं सकरुणहृदयाः स्वोक्तिभिः क्षालयन्ति ।२।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जिस प्रकार चन्दनवृक्षकी फैली हुई गन्धसे सदा सुवासित होकर आस-पासके अन्य वृक्ष भी स्थूल शरीरधारी प्राणियोंके तापको शान्त कर देते हैं उसी प्रकार जिन्हें सद्गुरुसे आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो गया है वे दयालुचित्त पुरुष अपने उपदेशसे अपने समीपवर्ती पुरुषोंके आध्यात्मिकादि तीनों प्रकारके ताप और कायिक, वाचिक, मानसिक तीनों प्रकारके पापोंको धो डालते हैं ॥ २ ॥

आत्मानात्मविवेक

आत्मानात्मप्रतीतिः प्रथममभिहिता सत्यमिथ्यात्वयोगा-
द्द्वेधा ब्रह्मप्रतीतिर्निगमनिगदिता स्वानुभूत्योपपत्त्या ।
आद्या देहानुबन्धाद्भवति तदपरा सा च सर्वात्मकत्वा-
दादौ ब्रह्माहमस्मीत्यनुभव उदिते खल्विदं ब्रह्म पश्चात् ।३।

क्योंकि सत्य और मिथ्या पदार्थोंका परस्पर योग (अन्योन्याध्यास) हो रहा है, इसलिये साधकके लिये सबसे पहले आत्मा और अनात्माका विवेक करना बतलाया गया है। उसके पश्चात् जो ब्रह्मकी प्रतीति होती है वह शास्त्रने, स्वानुभव और उपपत्ति (युक्ति) से होनेवाली—इस प्रकार दो तरहकी बतायी है। इनमें प्रथम देह-सम्बन्धको रखते हुए होती है और दूसरी सर्वात्मभाव होनेपर। प्रथम जब 'मैं ब्रह्म हूँ' यह अनुभव उदित हो लेता है उसके पीछे यह बोध होता है कि यह सभी कुछ ब्रह्म है ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

आत्मा चिद्वित्सुखात्मानुभवपरिचितः सर्वदेहादियन्ता
सत्येवं मूढबुद्धिर्भजति ननु जनोऽनित्यदेहात्मबुद्धिम् ।
बाह्येऽस्थिस्नायुमज्जापलरुधिरवसाचर्ममेदोयुगन्त-
र्विण्मूत्रश्लेष्मपूर्णं स्वपरवपुरहो संविदित्वापि भूयः ॥४॥
देहस्त्रीपुत्रमित्रानुचरहयवृषास्तोषहेतुर्ममेत्थं
सर्वे स्वायुर्नयन्ति प्रथितमलममी मांसमीमांसयेह ।
एते जीवन्ति येन व्यवहृतिपटवो येन सौभाग्यभाज-
स्तं प्राणाधीशमन्तर्गतममृतममुं नैव मीमांसयन्ति ॥५॥

आत्मा सत्, चित् और सुखस्वरूप है; वह अनुभवद्वारा सकल देहादिका नियन्ता माना गया है । ऐसा होनेपर भी मूढबुद्धि पुरुष सर्वदा इस अनित्य देहात्मबुद्धिको ही आश्रय देता है । सब लोग अपने और पराये शरीरोंको बाहरसे हड्डी, स्नायु, मज्जा, मांस, रुधिर, चर्बी और मेदयुक्त तथा भीतरसे मल, मूत्र और कफादिसे भरा हुआ जानकर भी, ये देह, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेवक, घोड़े और बैल मेरे सुखके साधन हैं—ऐसा समझकर इस मांस-मीमांसामें ही अपने सुप्रसिद्ध मानवजीवनको नष्ट कर देते हैं, और जिसके द्वारा ये सब जीवन धारण करते हैं, अपने-अपने व्यवहारमें समर्थ होते हैं तथा जो इनके सौभाग्यका कारण है, अपने अन्तःकरणमें स्थित उस प्राणाधीश अमृत-तत्त्वका वे मूढ जीव कुछ भी विचार नहीं करते ॥४-५॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

कश्चित्कीटः कथंचित्पटुमतिरभितः कण्टकानां कुटीरं
कुर्वंस्तेनैव साकं व्यवहृतिविधये चेष्टते यावदायुः ।
तद्वज्जीवोऽपि नानाचरितसमुदितैः कर्मभिः स्थूलदेहं
निर्मायात्रैव तिष्ठन्ननुदिनममुना साकमभ्येति भूमौ ॥६॥

जिस प्रकार कोई चतुर कीड़ा किसी प्रकार एक काँटोंका घोंसला बनाकर आयुपर्यन्त उसीके साथ व्यवहार करता रहता है उसी प्रकार जीव भी अपने नाना प्रकारके आचरणोंसे उदित हुए प्रारब्ध कर्मोंद्वारा यह स्थूलदेह रचकर [अहंभावसे] इसीमें स्थित हो प्रतिदिन इसीके साथ पृथिवीमें विचरता रहता है ॥ ६ ॥

स्वीकुर्वन्व्याघ्रवेषं स्वजठरभृतये भीषयन्यश्च मुग्धा-
न्मत्वा व्याघ्रोऽहमित्थं स नरपशुमुखान्बाधते किं नु सत्त्वान्।
मत्वा स्त्रीवेषधारी स्त्र्यहमिति कुरुते किं नटो भर्तुरिच्छां
तद्वच्छारीर आत्मा पृथगनुभवतो देहतो यत्स साक्षी ॥७॥

अपना पेट पालनेके लिये जो व्याघ्रका वेष बनाकर भोले मनुष्योंको डराया करता है वह मायावी क्या अपनेको सचमुच बाघ समझकर मनुष्य-पशु आदि अन्य जीवोंको किसी प्रकारका कष्ट देता है ? अथवा स्त्रीवेषधारी नट क्या अपनेको स्त्री समझकर पतिकी कामना करता है ? इसी प्रकार यह अनुभवसिद्ध है कि शरीरधारी आत्मा शरीरसे पृथक् है, क्योंकि वह उसका साक्षी है ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

स्वं बालं रोदमानं चिरतरसमयं शान्तिमानेतुमग्रे
द्राक्षं खार्जूरमाम्रं सुकदलमथवा योजयत्यम्बिकास्य ।
तद्वच्चेतोऽतिमूढं बहुजननभवान्मौढ्यसंस्कारयोगा-
द्बोधोपायैरनेकैरवशमुपनिषद्बोधयामास सम्यक् ॥८॥

जिस प्रकार चिरकालसे रोते हुए अपने बालकको शान्त करनेके लिये माता उसके आगे अंगूर, खजूर, आम अथवा केला आदि रख देती है उसी प्रकार अनेकों बार उत्पन्न होने और मरनेके कारण मूढ़ताके संस्कारोंका योग होनेसे अति मुग्ध और विवश हुए इस चित्तको उपनिषद्ने बोधप्राप्तिके अनेकों उपायोंद्वारा खूब समझाया है ॥८॥

आत्माकी परमप्रियता

यत्प्रीत्या प्रीतिमात्रं तनुयुवतितनूजार्थमुख्यं स तस्मा-
त्प्रेयानात्माथ शोकास्पदमितरदतः प्रेय एतत्कथं स्यात् ।
भार्याद्यं जीवितार्थी वितरति च वपुः स्वात्मनः श्रेय इच्छं-
स्तस्मादात्मानमेव प्रियमधिकमुपासीत विद्वान्न चान्यत् ९

जिसकी प्रीतिसे ही अपना शरीर, स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रीतिपात्र होते हैं वह आत्मा ही उन सबसे अधिक प्रिय होता है। आत्माके सिवा और सब पदार्थ तो शोकके ही स्थान हैं; इसलिये वे प्रिय कैसे हो सकते हैं? यह बात स्पष्ट देखनेमें आती है कि अपने जीवनको बचानेके लिये मनुष्य स्त्री आदिको न्योछावर कर देता है

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

और अपने सुखके लिये [कोई घोर विपत्ति उपस्थित होनेपर] अपना शरीर भी दे डालता है। इसलिये विद्वान्को चाहिये कि सबसे अधिक अपने आत्माकी ही उपासना करे, और किसीकी नहीं ॥ ९ ॥

यस्माद्यावत्प्रियं स्यादिह हि विषयतस्तावदस्मिन्प्रियत्वं
यावद्दुःखं च यस्माद्भवति खलु ततस्तावदेवाप्रियत्वम्।
नैकस्मिन्सर्वकालेऽस्त्युभयमपि कदाप्यप्रियोऽपि प्रियः स्या-
त्प्रेयानप्यप्रियो वा सततमपि ततः प्रेय आत्माख्यवस्तु १०

इस लोकमें जिस विषयसे जितना सुख प्राप्त होता है उसमें उतनी ही प्रियता होती है और जिससे जितना दुःख होता है उसमें उतनी ही अप्रियता होती है। एक ही विषयमें ये दोनों गुण हर समय कभी नहीं रह सकते। क्योंकि किसी समय अप्रिय भी प्रिय हो जाता है और प्रिय भी अप्रिय हो जाता है; अतः नित्यप्रिय तो एक आत्मतत्त्व ही है ॥ १० ॥

श्रेयः प्रेयश्च लोके द्विविधमभिहितं काम्यमात्यन्तिकं च
काम्यं दुःखैकबीजं क्षणलवविरसं तच्चिकीर्षन्ति मन्दाः।
ब्रह्मैवात्यन्तिकं यन्निरतिशयसुखस्यास्पदं संश्रयन्ते
तत्त्वज्ञास्तच्च काठोपनिषदभिहितं षड्विधायां च वल्ल्याम्

लोकमें श्रेय (कल्याणकारी) और प्रेय (प्रिय लगनेवाले पदार्थ) दोनों ही काम्य और आत्यन्तिक रूपसे दो-दो प्रकारके बताये गये हैं। उनमें काम्य श्रेय (स्वर्गादि) और प्रेय (स्त्री-पुत्रादि) तो

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

एकमात्र दुःखके ही बीज और पलभरमें ही फीके पड़ जानेवाले हैं—उन्हें मूर्ख लोग ही प्राप्त करना चाहते हैं। किन्तु आत्यन्तिक [श्रेय एवं प्रेय] तो ब्रह्म ही है जो सर्वाधिक सुखका स्थान है और जिसका तत्त्व-ज्ञानी पुरुष ही आश्रय लेते हैं। उसका कठोपनिषद्‌की छः प्रकारकी वल्लियोंमें निरूपण किया गया है ॥ ११ ॥

अन्तर्निष्ठ मुमुक्षुका लक्षण

आत्माम्भोधेस्तरङ्गोऽस्म्यहमिति गमने भावयन्नासनस्थः
संवित्सूत्रानुविद्धो मणिरहमिति वास्मीन्द्रियार्थप्रतीतौ।
हृष्टोऽस्म्यात्मावलोकादिति शयनविधौ मग्न आनन्दसिन्धा-
वन्तर्निष्ठो मुमुक्षुः स खलु तनुभृतां यो नयत्येवमायुः।१२।

जो मनुष्य चलते समय ऐसी भावना करता है कि 'मैं आत्मारूपी समुद्रकी ही एक तरंग हूँ' आसनपर स्थित होते समय सोचता है कि 'मैं ज्ञानरूपी धागेमें पिरोया हुआ एक मनका हूँ' तथा इन्द्रियोंके विषयोंकी प्रतीति होनेपर अकस्मात् यह समझने लगता है कि 'अहा! मैं तो आत्माका ही दर्शन करके आनन्दित हो रहा हूँ' और जब सो जाता है तो अपनेको आनन्दसमुद्रमें ही डूबा हुआ जानता है। देहधारियोंमें जो पुरुष इस प्रकार अपनी जीवनयात्राका निर्वाह करता है वह निश्चय ही एक अन्तर्निष्ठ मुमुक्षु है ॥ १२ ॥

वैराजव्यष्टिरूपं जगदखिलमिदं नामरूपात्मकं स्या-
दन्तःस्थप्राणमुख्यात्प्रचलति च पुनर्वेत्ति सर्वान्पदार्थान्।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

नायं कर्ता न भोक्ता सवितृवदिति यो ज्ञानविज्ञानपूर्णः
साक्षादित्थं विजानन्व्यवहरति परात्मानुसंधानपूर्वम् ।१३।

'यह नामरूपात्मक सम्पूर्ण जगत् विराट् पुरुषका व्यष्टि रूप है। यह अपने भीतर स्थित मुख्य प्राणके आश्रयसे ही चलता-फिरता एवं सम्पूर्ण पदार्थोंको जानता है—यह सूर्यके समान न तो कर्ता है और न भोक्ता ही' जो ज्ञान-विज्ञानपूर्ण पुरुष ऐसा साक्षात् जान लेता है वह सर्वत्र परमात्माका दर्शन करते हुए ही सब व्यवहार किया करता है ॥ १३ ॥

दो प्रकारका वैराग्य

नैर्वेद्यं ज्ञानगर्भं द्विविधमभिहितं तत्र वैराग्यमाद्यं
प्रायो दुःखावलोकाद्भवति गृहसुहृत्पुत्रवित्तैषणादेः ।
अन्यज्ज्ञानोपदेशाद्यदुदितविषये वान्तवद्धेयता स्या-
त्प्रव्रज्यापि द्विधा स्यान्नियमितमनसां देहतो गेहतश्च ।१४।

नैर्वेद्य और ज्ञानगर्भ नामोंसे वैराग्य दो प्रकारका कहा गया है। इनमें प्रथम (नैर्वेद्य) प्रायः घर, मित्र, पुत्र और धनादिकी लालसामें दुःखोंको देखनेसे हुआ करता है; और दूसरा ज्ञानोपदेश प्राप्त कर चुकनेपर उक्त वस्तुओंमें वमन किये हुए पदार्थके समान हेयबुद्धि हो जानेसे होता है। इसी प्रकार संयमी पुरुषोंका संन्यास भी दो प्रकार-का ही होता है। प्रथम वे घरका त्याग करते हैं और फिर देहका अभिमान भी छोड़ देते हैं ॥ १४ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

यः कश्चित्सौख्यहेतोस्त्रिजगति यतते नैव दुःखस्य हेतो-
र्देहेऽहंता तदुत्था स्वविषयममता चेति दुःखास्पदे द्वे ।
जानन्रोगाभिघाताद्यनुभवति यतो नित्यदेहात्मबुद्धि-
र्भार्यापुत्रार्थनाशे विपदमथ परामेति नारातिनाशे ॥१५॥

देखो, त्रिलोकीमें जितने जीव हैं वे सब सुखके लिये ही प्रयत्न करते हैं—दुःखके लिये नहीं। दुःखके स्थान दो ही हैं—प्रथम देहमें अहं-बुद्धि होना और दूसरे उस अहं-बुद्धिसे आत्मीय (देह-पुत्रादि) विषयोंमें ममता उत्पन्न हो जाना। इसीसे लोग [आत्माको शरीरसे भिन्न] जानकर भी मोहवश इस शरीरमें ही नित्य आत्मबुद्धि कर उसके रोग और आघात आदिका कष्ट सहते हैं तथा ममताके कारण ही स्त्री या पुत्रके नष्ट हो जानेपर तो बड़ी विपद्में पड़ जाते हैं, किन्तु शत्रुके नष्ट होनेपर नहीं ॥ १५ ॥

तिष्ठन्गेहे गृहेशोऽप्यतिथिरिव निजं धाम गन्तुं चिकीर्षु-
र्देहस्थं दुःखसौख्यं न भजति सहसा निर्ममत्वाभिमानः ।
आयात्रायास्यतीदं जलदपटलवद्यातृ यास्यत्यवश्यं
देहाद्यं सर्वमेवं प्रविदितविषयो यश्च तिष्ठत्ययत्नः ॥१६॥

जिसे [गृह आदिमें] ममत्वका अभिमान नहीं है वह गृहस्थ पुरुष भी, अपने निर्दिष्ट स्थानको जानेकी इच्छावाले अतिथिके समान गृहमें रहता हुआ भी इस शरीरके सुख-दुःखसे सहसा लिप्त नहीं होता। वह

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जानता है कि आकाशमें स्वतः ही उठने और लीन होनेवाले बादलोंके समान ये शरीरादि समस्तवर्गमें जो आनेवाले हैं वे अवश्य आयेंगे और जिन्हें जाना है वे अवश्य चले जायँगे [इससे आकाशस्वरूप मुझ आत्माका कोई हानि-लाभ नहीं है]। इस प्रकार यथावत् जानकर वह किसी प्रकारका यत्न नहीं करते हुए निश्चिन्त रहता है ॥ १६ ॥

शक्त्या निर्मोकतः स्वाद्बहिरहिरिव यः प्रव्रजन्स्वीयगेहा-
च्छायां मार्गद्रुमोत्थां पथिक इव मनाक्संश्रयेद्देहसंस्थाम्।
क्षुत्पर्याप्तं तरुभ्यः पतितफलमयं प्रार्थयेद्भैक्षमन्नं
स्वात्मारामं प्रवेष्टुं स खलु सुखमयं प्रव्रजेद्देहतोऽपि ॥१७॥

जिस प्रकार साँप अपनी केंचुल छोड़ देता है उसी प्रकार जिसने अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अपने घरको त्याग दिया है वह पुरुष कुछ समयके लिये इस शरीरका आश्रय ले लिया करता है, जैसे मार्ग-में जानेवाला पथिक कुछ देरके लिये मार्गस्थित वृक्षकी छायामें विश्राम लेता है। वह वृक्षोंसे अपनी क्षुधानिवृत्ति करने योग्य स्वयं ही गिरे हुए कुछ फलोंकी भिक्षा माँग लेता है [अर्थात् उसे केवल शरीरयात्रा-योग्य खान-पानादिकी वासना बनी रहती है]। किन्तु पीछे सुखस्वरूप स्वात्माराममें प्रवेश करनेके लिये वह देहकी भी ममता त्याग देता है॥१७॥

कामादिका त्याज्यत्व

कामो बुद्धावुदेति प्रथममिह मनस्युद्दिशत्यर्थजातं
तद्गृह्णातीन्द्रियास्यैस्तदनधिगमतः क्रोध आविर्भवेच्च।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

प्राप्तावर्थस्य संरक्षणमतिरुदितो लोभ एतत्त्रयं स्यात्
सर्वेषां पातहेतुस्तदिह मतिमता त्याज्यमध्यात्मयोगात्॥१८॥

सबसे पहले बुद्धिमें कामहीका उदय होता है । इससे मनुष्य मनमें नाना प्रकारके पदार्थोंका संकल्प करके उन्हें अपने इन्द्रिय-रूप मुखोंसे ग्रहण करने लगता है । जब उनकी प्राप्तिमें बाधा पड़ती है तो क्रोधका आविर्भाव हो जाता है । और यदि वे पदार्थ प्राप्त हो गये तो उनकी रक्षाका विचार होने लगता है—यही लोभका उदय है । ये तीनों ही सबके पतनके कारण हैं । इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको आत्मविचारके द्वारा इन्हें त्याग देना चाहिये ॥ १८ ॥

दानं ब्रह्मार्पणं यत्क्रियत इह नृभिः स्यात्क्षमाक्रोधसंज्ञा
श्रद्धास्तिक्यं च सत्यं सदिति परमतः सेतुसंज्ञं चतुष्कम् ।
तत्स्याद्बन्धाय जन्तोरिति चतुर इमान्दानपूर्वैश्चतुर्भि-
स्तीर्त्वा श्रेयोऽमृतं च श्रयत इह नरः स्वर्गतिं ज्योतिराप्तिम्॥१९॥

इस लोकमें मनुष्योंद्वारा जो कुछ ब्रह्मार्पण बुद्धिसे दिया जाता है वह 'दान' है, क्रोध न होना ही 'क्षमा' है, आस्तिक्य (शास्त्र एवं ईश्वरमें विश्वास होना) ही 'श्रद्धा' कहलाता है तथा सत्स्वरूप ब्रह्म ही 'सत्य' है । इनके विपरीत जो अदान, अक्षमा, अश्रद्धा और असत्य हैं उन चारोंका नाम ही 'सेतु' है । वह सेतु ही जीवके बन्धन-का कारण है; अतः इन चारोंको दान आदि चार साधनोंसे पारकर

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

मनुष्य कल्याणरूप अमृतको प्राप्त कर लेता है; और इन्हींसे उसे स्वर्ग-लोक तथा ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मकी भी प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥

देव और अतिथिपूजन

अन्नं देवातिथिभ्योऽर्पितममृतमिदं चान्यथा मोघमन्नं
यश्चात्मार्थं विधत्ते तदिह निगदितं मृत्युरूपं हि तस्य ।
लोकेऽसौ केवलाघो भवति तनुभृतां केवलादी च यः स्यात्
त्यक्त्वा प्राणाग्निहोत्रं विधिवदनुदिनं योऽश्नुते सोऽपि मर्त्यः

जो अन्न [बलिवैश्वदेवद्वारा] देवताओंको और आये हुए अतिथियोंको अर्पित कर दिया जाता है वह अमृतरूप होता है। उसके बिना वह निष्फल होता है। जिस अन्नको पुरुष केवल अपने ही शरीरके पोषणके लिये पकाता है वह तो उसकी मृत्युरूप ही कहा गया है। देहधारियोंमें जो पुरुष [बिना किसीको दिये] अकेला ही भोजन करता है वह तो मानो केवल पापरूप ही है और जो नित्यप्रति विधिपूर्वक प्राणाग्निहोत्र* किये बिना भोजन करता है वह भी मृतकवत् ही है ॥ २० ॥

लोके भोजः स एवार्पयति गृहगतायार्थिनेऽन्नं कृशाय
यस्तस्मै पूर्णमन्नं भवति मखविधौ जायतेऽजातशत्रुः ।

---

* भोजनसे पहले आचमन करके छोटे-छोटे पाँच ग्रास बनाकर जो (१) प्राणाय स्वाहा (२) अपानाय स्वाहा (३) समानाय स्वाहा (४) उदानाय स्वाहा (५) व्यानाय स्वाहा—इन पाँच मन्त्रोंसे अपने ही मुखमें उन ग्रासोंकी पाँच आहुतियाँ दी जाती हैं उसे 'प्राणाग्निहोत्र' कहते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

सख्ये नान्नार्थिने योऽर्पयति न स सखा सेवमानाय नित्यं
संसक्तायान्नमस्माद्विमुख इव परावृत्तिमिच्छेत्कदर्यात् ।२१।

जो पुरुष अपने घर आये हुए दुर्बल (भूखे-प्यासे) अतिथिको अन्न समर्पण करता है लोकमें उसीको 'भोज' कहते हैं। उसे [लौकिक और वैदिक] दोनों प्रकारके यज्ञोंमें पूर्ण अन्नकी प्राप्ति होती है और वह शत्रुहीन हो जाता है। इसके विपरीत जो पुरुष अन्नकी इच्छावाले अपने मित्रको अथवा अपने आश्रित रहनेवाले सेवकको अन्न नहीं देता उसे तो मित्र ही न समझना चाहिये। उस कृपणके पाससे तो अन्न भी विमुखके समान दूर भागना चाहता है [अर्थात् उसे अन्नका भी घाटा रहने लगता है] ॥ २१ ॥

जगत्की ब्रह्मरूपता

स्वाज्ञानज्ञानहेतू जगदुदयलयौ सर्वसाधारणौ स्तो
जीवेष्वास्वर्णगर्भं श्रुतय इति जगुर्हूयते स्वप्रबोधे।
विश्वं ब्रह्मण्यबोधे जगति पुनरिदं हूयते ब्रह्म यद्व-
च्छुक्तौ रौप्यं च रौप्येऽधिकरणमथवा हूयतेऽन्योन्यमोहात्

हिरण्यगर्भसे लेकर सभी जीवोंमें यह बात एक-सी ही देखी जाती है कि आत्मस्वरूपके अज्ञानसे जगत्का उदय होता है और उसका ज्ञान होनेपर लय हो जाता है। यही बात श्रुतियोंने भी कही है। जिस प्रकार अन्योन्याध्याससे [अर्थात् परस्पर एक-दूसरेके गुणोंमें

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

भ्रम हो जानेसे] चाँदीमें उसकी अधिष्ठानरूप सीपी लुप्त हो जाती है और [यथार्थ ज्ञान होनेपर भ्रमजनित] चाँदी सीपीमें समा जाती है उसी प्रकार आत्मज्ञान होनेपर यह जगत् ब्रह्ममें लीन हो जाता है तथा अज्ञानावस्थामें ब्रह्म ही जगत्में समाया रहता है ॥ २२ ॥

तुच्छत्वान्नासदासीद्गगनकुसुमवद्भेदकं नो सदासीत्
किं त्वाभ्यामन्यदासीद्व्यवहृतिगतिसन्नास लोकस्तदानीम्
किं त्वर्वागेव शुक्तौ रजतवदपरो नो विराड् व्योमपूर्वः
शर्मण्यात्मन्यथैतत्कुहकसलिलवत्किं भवेदावरीवः ॥२३॥

[इस नामरूपात्मक दृश्यमान जगत्का उपादान कारण क्या है ?—ऐसा विचार करते समय शुद्ध निरीह ब्रह्मको कारण मानना युक्ति-संगत नहीं है । यदि ब्रह्मसे भिन्न किसी अन्य वस्तुको कारण मानें तो क्या वह सद्रूप है या असद्रूप ? ऐसी शंका होनेपर इन दोनों रूपोंका निषेध करते हैं—] सृष्टिकालमें कोई असत् पदार्थ नहीं था क्योंकि वह आकाश-कुसुमके समान तुच्छ—अभावरूप है, इसी प्रकार ब्रह्ममें भेद करनेवाला कोई सत्पदार्थ भी नहीं था [क्योंकि वास्तवमें ब्रह्मसे अन्य किसी भेदक पदार्थके होनेकी संभावना ही नहीं है] किन्तु इन दोनोंसे विलक्षण कोई और ही पदार्थ था। उस समय व्यवहारका विषयभूत यह लोक नहीं था; क्योंकि यह सीपीमें प्रतीत होनेवाली चाँदीके समान पीछे ही उत्पन्न हुआ है। [यदि कहें, कोई साकार पदार्थ नहीं था तथापि आकाश और महाभूतसे आरब्ध विराट् तो थे ही, तो यह भी ठीक नहीं

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

क्योंकि] उस समय विराट् और उसका पूर्ववर्ती कारण आकाश भी नहीं था। ऐसी स्थितिमें मायावीके मायानिर्मित जलसे [मायानिवृत्तिके बाद] जिस प्रकार पृथ्वीका आवरण नहीं होता है उसी प्रकार इस शुद्ध ब्रह्मका क्या आवरण हो सकता है ? ॥ २३ ॥

बन्धो जन्मात्ययात्मा यदि न पुनरभूत्तर्हि मोक्षोऽपि नासीद्
यद्वद्रात्रिर्दिनं वा न भवति तरणौ किं तु दृग्दोष एषः ।
अप्राणं शुद्धमेकं समभवदथ तन्मायया कर्तृसंज्ञं
तस्मादन्यच्च नासीत्परिवृतमजया जीवभूतं तदेव ॥२४॥

इस प्रकार जब जन्ममरणरूप बन्ध ही नहीं था तो मोक्ष भी कुछ नहीं था जैसे सूर्यमें दिन या रात्रि नहीं होते बल्कि यह हमारी दृष्टिका ही दोष है। अतः सबसे पहले प्राणादि-सम्बन्धसे रहित एक शुद्ध ब्रह्म ही था, उसीका मायासे कर्ता (हिरण्यगर्भ) नाम पड़ गया। उससे पृथक् और कुछ न था, मायासे मोहित होकर वही जीव बन गया ॥ २४ ॥

मायानिरूपण

प्रागासीद्भावरूपं तम इति तमसा गूढमस्मादतर्क्यं
क्षीरान्तर्यद्वदम्भो जनिरिह जगतो नामरूपात्मकस्य ।
कामाद्धातुः सिसृक्षोरनुगतजगतः कर्मभिः संप्रवृत्ता-
द्रेतोरूपैर्मनोभिः प्रथममनुगतैः सन्ततैः कार्यमाणैः ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

[पूर्व कथनानुसार यदि कुछ था ही नहीं तो जगत्की उत्पत्ति कैसे हुई ?] इस जगत्से पूर्व [इसका उपादान कारण] भावरूप अज्ञान था । जिस प्रकार दूधमें पानी छिपा रहता है उसी प्रकार उस अज्ञानसे छिपा हुआ यह जगत् भी जान नहीं पड़ता था । अनादि प्रवाहसे अनुगत हुए बीजरूप मनोंद्वारा निरन्तर कराये जानेवाले अनादि संसारके कर्मोंसे प्रेरित हुई सृष्टिकर्ता विधाताकी इच्छासे इस अज्ञानसे ही नामरूपात्मक जगत्की उत्पत्ति हो जाती है ॥ २५ ॥

चत्वारोऽस्याःकपर्दा युवतिरथ भवेन्नूतना नित्यमेषा
माया वा पेशला स्यादघटनघटनापाटवं याति यस्मात् ।
स्यादारम्भे घृतास्या श्रुतिभववयुनान्येवमाच्छादयन्ती
तस्यामेतौ सुपर्णाविव परपुरुषौ तिष्ठतोऽर्थप्रतीत्या ॥२६॥

इस मायाकी चार विशेषताएँ हैं । प्रथम तो यह सदा ही नवीन और युवती बनी रहती है । दूसरे यह बड़ी ही चतुर है, क्योंकि यह अनहोनी बातोंको भी कर दिखलानेमें कुशल है । तीसरे यह पहले-पहल बड़ी चिकनी-चुपड़ी जान पड़ती है और चौथे यह अपनी आवरण शक्तिसे वेदजनित आत्मज्ञानको ढके रहती है । उसमें दो पक्षियोंके समान स्थित हुए ये ईश्वर और जीव सब वस्तुओंको प्रकाशित करते रहते हैं ॥ २६ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जीव और ईश्वरका स्वरूप

एकस्तत्रास्त्यसङ्गस्तदनु तदपरोऽज्ञानसिन्धुं प्रविष्टो
विस्मृत्यात्मस्वरूपं स विविधजगदाकारमाभासमैक्षत् ।
बुद्ध्यान्तर्यावदैक्षद्विसृजति तमजा सोऽपि तामेवमेक-
स्तावद्विप्रास्तमेकं कथमपि बहुधा कल्पयन्ति स्ववाग्भिः ॥

उन दो पक्षियोंमेंसे एक (ईश्वर) तो असंग है और [उसके आश्रित रहनेवाला] दूसरा (जीव) अज्ञानसमुद्रमें डूबा हुआ है। वह अपने आत्म-स्वरूपको भूलकर नाना प्रकारके जगत्‌रूप आभासको देखने लगा है। जिस समय वह अपनी निश्चयात्मिका बुद्धिसे अपने अन्तःकरणमें विचार करने लगता है तो वह माया उसे तत्काल छोड़ देती है और वह भी मायाको त्याग देता है, [फिर उसे अपनी अखण्डताका बोध हो जाता है]। वेदज्ञ ब्राह्मणोंने [शिष्यादिको बोध करानेके लिये ही] किसी प्रकार अपनी वाणीमात्रसे उस एक आत्मतत्त्वमें अनेकता मान ली है ॥२७॥

नायाति प्रत्यगात्मा प्रजननसमये नैव यात्यन्तकाले
यत्सोऽखण्डोऽस्ति लैङ्गं मन इह विशति प्रव्रजत्यूर्ध्वमर्वाक्।
तत्कार्श्यं स्थूलतां वा न भजति वपुषः किन्तु संस्कारजाते
तेजोमात्रा गृहीत्वा व्रजति पुनरिहायाति तैस्तैः सहैव।२८।

यह प्रत्यगात्मा न तो जन्म लेनेके समय कहींसे आता है और न अन्तसमय कहीं जाता ही है, क्योंकि वह अखण्ड है। [और आने-

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जानेका व्यवहार परिच्छिन्न वस्तुओंमें हुआ करता है] मनोमय लिंग-शरीर ही [जन्मके समय] इस लोकमें आता है और वही [मरणोपरान्त] ऊँच-नीच लोकोंमें जाता है। वह भी शरीरके दुर्बलता-स्थूलता आदि धर्मोंको ग्रहण नहीं करता बल्कि उस जन्ममें किये हुए कर्मोंके संस्कार तथा इन्द्रियादिके सूक्ष्म अंशोंको लेकर जाता है और फिर उन्हींके साथ इस लोकमें भी आता है ॥ २८ ॥

आसीत्पूर्वं सुबन्धुर्भृशमवनिसुरो यः पुरोधाः सनाते-
र्ब्राह्मयात्कूटाभिचारात्स खलु मृतिमितस्तन्मनोऽगात्कृतान्तम् ।
तद्भ्राता श्रौतमन्त्रैः पुनरनयदिति प्राह सूक्तेन वेद-
स्तस्मादात्माभियुक्तं व्रजति ननु मनः कर्हिचिन्नान्तरात्मा

[इस विषयमें एक ऋग्वेदकी गाथाका उल्लेख करते हैं—] पूर्वकालमें सुबन्धु नामक एक सम्मानित ब्राह्मण राजा सनातिका पुरोहित था। कहते हैं, वह एक ब्राह्मणके कूट अभिचारसे मर गया, और उसका मन यमलोकको चला गया। वेद एक सूक्तमें कहता है कि 'उसके भाईने वेदमन्त्रोंद्वारा उसे (उसके मनको) फिर बुला लिया।' इससे सिद्ध होता है कि चिदाभासंयुक्त मन ही आया-जाया करता है—अन्तरात्मा कभी नहीं आता-जाता ॥ २९ ॥

एको निष्कम्प आत्मा प्रचलति मनसा धावमानेन तस्मिं-
स्तिष्ठन्नग्रेऽथ पश्चान्न हि तमनुगतं जानते चक्षुराद्याः ।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

यद्वत्पाथस्तरङ्गैः प्रचलति परितो धावमानैस्तदन्तः
प्राक्पश्चादस्ति तेषां पवनसमुदितैस्तैः प्रशान्तैर्यथावत् ।३०।

यद्यपि आत्मा एक और अविचल है, तथापि वह दौड़ते हुए मनके साथ दौड़ता भी है और उसमें रहता हुआ उसके आगे-पीछे भी विद्यमान रहता है। नेत्रादि इन्द्रियाँ सर्वत्र व्याप्त हुए इस आत्मतत्त्वको नहीं जानतीं। जिस प्रकार वायुके झोकोंसे उठी हुई चारों ओर दौड़नेवाली तरंगोंके साथ भी जल दौड़ता है और उनके आगे, पीछे तथा भीतर भी रहता है तथा शान्त हो जानेपर अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आ जाता है [उसी प्रकार यह आत्मतत्त्व भी अपने ही विवर्तरूप मन-इन्द्रियादिमें ओतप्रोत रहता है। और ज्ञान-प्राप्तिके अनन्तर उनके लीन हो जानेपर स्वस्वरूपमें स्थित हो जाता है] ॥ ३० ॥

जीव प्रपञ्चमें कैसे फँसता है ?

एकाक्यासीत्स पूर्वं मृगयति विषयानानुपूर्व्यान्तरात्मा
जाया मे स्यात्प्रजा वा धनमुपकरणं कर्म कुर्वंस्तदर्थम् ।
क्लेशैः प्राणावशेषैर्महदपि मनुते नान्यदस्माद्वरीय-
स्त्वेकालाभेऽप्यकृत्स्नो मृत इव विरमत्येकहान्याकृतार्थः

वह अन्तरात्मा पहले (ब्रह्मचर्यावस्थामें) अकेला ही था। फिर वह क्रमशः विषयोंकी खोज करने लगा। वह निरन्तर इसी चिन्तामें रहने लगा कि 'मुझे, स्त्री, पुत्र, धन तथा अन्य भोगसामग्री प्राप्त हो और इन्हींके लिये प्राणान्त कष्ट उठाकर भी वह नाना प्रकारके कर्म करने लगा। अब वह किसी बड़ी-से-बड़ी वस्तुको भी इन स्त्री-पुत्रादिसे

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

बढ़कर नहीं समझता । वह इनमेंसे किसी एकके भी न मिलने-पर अपनेको अपूर्ण समझने लगता है और एकका भी अभाव हो जानेपर अपनेको अकृतार्थ समझकर मुरदेके समान निरुत्साह हो जाता है ॥३१॥

आवरणशक्ति किसको ढकती है ?

नासीत्पूर्वं न पश्चादतनुदिनकराच्छादको वारिवाहो
दृश्यः किं त्वन्तरासौ स्थगयति स दृशं पश्यतो नार्कबिम्बम्
नो चेदेवं विनार्कं जलधरपटलं भासते तर्हि कस्मात्
तद्वद्विश्वं पिधत्ते दृशमथ न परं भासकं चालकं स्वम्॥३२॥

देखो, बड़े भारी सूर्यमण्डलको आच्छादित करनेवाला यह तुच्छ बादल न तो पहले ही था और न पीछे ही रहेगा । यह तो बीचहीमें दीखने लगा है और वस्तुतः यह तो देखनेवालोंकी दृष्टिको ही ढकता है—सूर्यमण्डलको नहीं । यदि इससे सूर्य छिप जाता तो उसके बिना यह स्वयं भी कैसे दिखायी देता ? [क्योंकि सम्पूर्ण दृश्यका प्रकाशक तो सूर्य ही है], अतः यह दृश्यमान जगत् बुद्धिका ही आवरण करता है—अपने अवभासक और प्रेरक परमात्माका नहीं ॥३२॥

जागृति भी स्वप्नवत् है

भुञ्जानः स्वप्नराज्यं ससकलविभवो जागरं प्राप्य भूयो
राज्यभ्रष्टोऽहमित्थं न भजति विषमं तन्मृषा मन्यमानः ।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

स्वप्ने कुर्वन्नगम्यागमनमुखमघं तेन न प्रत्यवायी
तद्वज्जाग्रद्दशायां व्यवहृतिमखिलां स्वप्नवद्विस्मरेच्चेत् ।३३।

कोई भी मनुष्य स्वप्नमें सम्पूर्ण वैभवके सहित राज्य भोगकर फिर जग पड़नेपर उसे मिथ्या समझनेके कारण 'हाय ! मैं राज्यभ्रष्ट हो गया' इस प्रकार चिन्ता नहीं करता, तथा स्वप्नमें अगम्या स्त्रीगमन आदि पाप करके भी, जग पड़नेपर उनके कारण अपनेको पापी नहीं मानता। इसी प्रकार जाग्रत्-अवस्थामें सम्पूर्ण चेष्टाएँ होते हुए भी जिसकी दृष्टिमें वे स्वप्नवत् हो गई हैं वह लिपायमान नहीं होता ॥ ३३ ॥

स्वप्नावस्थानुभूतं शुभमथ विषमं तन्मृषा जागरे स्या-
ज्जाग्रत्यां स्थूलदेहव्यवहृतिविषयं तन्मृषा स्वापकाले ।
इत्थं मिथ्यात्वसिद्धावनिशमुभयथा सज्जते तत्र मूढः
सत्ये तद्भासकेऽस्मिन्निह हि कुत इदं तन्न विद्मो वयं हि।३४।

जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें अनुभव किया हुआ शुभ या अशुभ जाग्रद्दशामें मिथ्या प्रतीत होने लगता है उसी प्रकार जाग्रत्में जो स्थूल देहसे व्यवहार किया जाता है वह भी स्वप्नावस्थामें मिथ्या हो जाता है। इस प्रकार दोनोंहीका मिथ्यात्व सिद्ध होनेपर भी मूढ़ लोग उसमें ही आसक्त रहते हैं। वे उन दोनों अवस्थाओंके प्रकाशक इस सत्यस्वरूप आत्मतत्त्वमें प्रेम क्यों नहीं करते ? यह बात हम अभीतक नहीं समझ सके ॥ ३४ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जीवन्तं जाग्रतीह स्वजनमथ मृतं स्वप्नकाले निरीक्ष्य
निर्वेदं यात्यकस्मान्मृतममृतममुं वीक्ष्य हर्षं प्रयाति ।
स्मृत्वाप्येतस्य जन्तोर्निधनमसुयुतिं भाषते तेन साकं
सत्येवं भाति भूयोऽल्पकसमयवशात्सत्यता वा मृषात्वम्

मनुष्य जाग्रत्-अवस्थामें जीवित रहनेवाले अपने किसी सम्बन्धीको स्वप्नमें मरा देखकर अकस्मात् उदास हो जाता है और मरे हुएको जीवित देखकर प्रसन्न हो जाता है। वह उस प्राणीके मृतक अथवा जीवित रहनेका स्मरण होते हुए भी उसके साथ बातचीत करता है। इस प्रकार दोनों अवस्थाएँ एक-सी होनेपर भी उसे अधिक और अल्पकालिक अनुभवके अनुसार जाग्रत्का सत्यत्व और स्वप्नका मिथ्यात्व प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥

स्वाप्नस्त्रीसङ्गसौख्यादपि भृशमसतो या च रेतश्च्युतिः स्यात्
सादृश्या तद्वदेतत्स्फुरति जगदसत्कारणं सत्यकल्पम् ।
स्वप्ने सत्यः पुमान्स्याद्युवतिरिह मृषैवानयोः संयुतिश्च
प्रातः शुक्रेण वस्त्रोपहतिरिति यतः कल्पनामूलमेतत्।३६।

जो सर्वथा असत्य है उस स्वप्नकालीन स्त्रीसंयोगके सुखसे भी वीर्यपात हो जाता है और वह दीखता है उसके समान ही, जिसका कारण असत् ही है ऐसा यह जगत् सत्यवत् प्रतीत होता है। स्वप्नमें पुरुष तो सत्य ही होता है, किन्तु स्त्री और उसका संयोग मिथ्या होते

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

हैं; तो भी प्रातःकाल वीर्यसे वस्त्र दूषित हुआ देखा ही जाता है। [इसी प्रकार आत्मा तो सत्य ही है किन्तु मायारूपिणी स्त्री और उसके साथ आत्माका संयोग मिथ्या है, फिर भी उस असत्य संयोगसे प्रकट हुआ यह जगत् सत्य ही जान पड़ता है] क्योंकि यह सब कल्पनामूलक ही है ॥३६॥

पश्यन्त्याराममस्य प्रतिदिवसममी जन्तवः स्वापकाले
पश्यत्येनं न कश्चित्करणगणमृते मायया क्रीडमानम् ।
जाग्रत्यर्थव्रजानामथ च तनुभृतां भासकं चालकं वा
नो जानीते सुषुप्तौ परमसुखमयं कश्चिदाश्चर्यमेतत् ॥३७॥

जिस समय स्वप्नावस्था आनेपर यह आत्मतत्त्व बाह्य इन्द्रियोंकी सहायताके बिना केवल मायासे ही क्रीडा किया करता है उस समय सभी जीव प्रतिदिन इसकी क्रीडाको तो देखा करते हैं, किन्तु इसे कोई नहीं देखता । जो जागृतिमें सम्पूर्ण पदार्थसमूह और देहधारियोंका प्रकाशक तथा प्रेरक है और सुषुप्तिमें परम सुखमय हो जाता है उस आत्माको कोई नहीं जानता—यह कैसे आश्चर्यकी बात है ! ॥ ३७ ॥

स्वप्ने मन्त्रोपदेशः श्रवणपरिचितः सत्य एष प्रबोधे
स्वाप्नादेव प्रसादादभिलषितफलं सत्यतां प्रातरेति ।
सत्यप्राप्तिस्त्वसत्यादपि भवति तथा किं च तत्स्वप्रकाशं
येनेदं भाति सर्वं चरमचरमथोच्चावचं दृश्यजातम्॥३८॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

स्वप्नावस्थामें कानोंमें पड़ा हुआ मन्त्रोपदेश जागृतिमें भी सत्य हो जाता है तथा स्वप्नकालीन शुभ दर्शनसे भी प्रातःकाल अभिलषित फलोंकी सत्यता देखनेमें आती है। इस प्रकार जब असत्य पदार्थोंसे भी सत्यकी प्राप्ति हो जाया करती है तो जिसके तेजसे यह सम्पूर्ण ऊँच-नीच चराचर जगत् भासता है वह स्वयंप्रकाश ब्रह्म भी यदि [गुरूपदेशादि] असत्य व्यवहारसे प्राप्त हो जाय तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३८ ॥

मध्यप्राणं सुषुप्तौ स्वजनिमनुविशन्त्यग्निसूर्यादयोऽमी
वागाद्याः प्राणवायुं तदिह निगदिता ग्लानिरेषां न वायोः ।
तेभ्यो दृश्यावभासो भ्रम इति विदितः शुक्तिकारौप्यकल्पः
प्राणायामव्रतं तच्छ्रुतिशिरसि मतं स्वात्मलब्धौ न चान्यत्

सुषुप्तिकालमें जब ये अग्नि-सूर्यादि इन्द्रियाधिष्ठाता देवगण अपने कारण मध्यप्राणमें लीन हो जाते हैं और वाक् आदि इन्द्रियाँ भी प्राणवायुमें समा जाती हैं तो उस समय इन इन्द्रियादिका ही लय कहा जाता है—प्राणवायुका नहीं। अतः [केवल जाग्रत्-अवस्थामें ही प्रतीत होनेवाली] इन इन्द्रियोंसे दीख पड़नेवाला यह दृश्य शुक्तिमें भासती हुई चाँदीके समान भ्रम ही माना गया है। इसीलिये उपनिषद्में * आत्मप्राप्तिके लिये प्राणायामव्रतको ही स्वीकार किया गया है—और किसीको नहीं ॥ ३९ ॥

---

* 'तस्मादेकमेव व्रतं चरेत् प्राण्याच्चैवापान्याच्च' (बृह० १ । ५ । २३)

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

ज्ञानप्राप्तिमें वैराग्यकी प्रधानता

नोऽकस्मादार्द्रमेधः स्पृशति च दहनः किं तु शुष्कं निदाघा-
दार्द्रं चेतोऽनुबन्धैः कृतसुकृतमपि स्वोक्तकर्मप्रजाथैः ।
तद्वज्ज्ञानाग्निरेतत्स्पृशति न सहसा किं तु वैराग्यशुष्कं
तस्माच्छुद्धो विरागः प्रथममभिहितस्तेन विज्ञानसिद्धिः ४०

जिस प्रकार गीले ईंधनको अग्नि एकाएक नहीं जलाता बल्कि धूपमें सुखाए हुए काष्ठको ही जलाता है उसी प्रकार जो चित्त अपने वर्णाश्रमधर्मकर्मके पालन एवं पुत्र और धन आदिकी वासनाओं-से ग्रस्त है उसका ज्ञानाग्नि एकाएक स्पर्श नहीं करता; वह तो वैराग्यके कारण शुष्क (वासनाहीन) हुए चित्तको ही जल्दी पकड़ता है । इससे सबसे पहले शुद्ध वैराग्य ही बतलाया गया है, उसीसे ज्ञानकी सिद्धि हो सकती है ॥ ४० ॥

यत्किञ्चिन्नामरूपात्मकमिदमसदेवोदितं भाति भूमौ
येनानेकप्रकारैर्व्यवहरति जगद्येन तेनेश्वरेण ।
तद्वत्प्रच्छादनीयं निभृतरशनया यद्वदेष द्विजिह्व-
स्तेन त्यक्तेन भोज्यं सुखमनतिशयं मा गृधोऽन्यद्धनाद्यम्

पृथिवीमें यह जो कुछ नामरूपात्मक जगत् भासता है वह मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है । जिस ईश्वरकी प्रेरणासे यह नाना प्रकारका व्यवहार करता है इसे उसीसे आच्छादित कर डालना

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

चाहिये, जैसे भली प्रकार पहचान लेनेपर [रज्जुमें प्रतीत होनेवाले] कल्पित सर्पको रज्जुसे व्याप्त कर दिया जाता है। अतः इस भ्रमजनित प्रपञ्चका त्याग करते हुए निरतिशय सुखस्वरूप आत्माका ही भोग करना चाहिये—अन्य धन आदिकी लालसा नहीं करनी चाहिये ॥४१॥

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति

जीवन्मुक्तिर्मुमुक्षोः प्रथममथ ततो मुक्तिरात्यन्तिकी च
तेऽभ्यासज्ञानयोगाद्गुरुचरणकृपापाङ्गसङ्गेन लब्धात् ।
अभ्यासोऽपि द्विधा स्यादधिकरणवशाद्दैहिको मानसश्च
शारीरस्त्वासनाद्यो ह्युपरतिरपरो ज्ञानयोगः पुरोक्तः ॥४२॥

मुमुक्षु पुरुषको [ज्ञानप्राप्तिके पश्चात्] पहले जीवन्मुक्ति होती है और उसके पीछे [प्रारब्धक्षय होनेपर] आत्यन्तिकी (विदेह) मुक्ति मिल जाती है। ये दोनों ही मुक्तियाँ गुरुचरणोंके कृपाकटाक्षसे प्राप्त हुए अभ्यास एवं ज्ञानयोगसे मिलती हैं। अधिकरणके भेदसे अभ्यास भी दैहिक और मानस दो प्रकारका होता है। उनमें आसनादि शारीरिक अभ्यास है तथा जगत्से उपरति होना मानसिक है; इसीको पहले ज्ञानयोग भी कहा है ॥ ४२ ॥

सर्वानुन्मूल्य कामान्हृदि कृतनिलयान्क्षिप्तशङ्कुनिवोच्चै-
र्दीर्यद्देहाभिमानस्त्यजति चपलतामात्मदत्तावधानः ।
यात्यूर्ध्वस्थानमुच्चैः कृतसुकृतभरो नाडिकाभिर्विचित्रं
नीलश्वेतारुणाभिः स्रवदमृतभरं गृह्यमाणात्मसौख्यः ४३

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जब मुमुक्षु आत्मानुसन्धान करने लगता है तो वह अपने हृदयमें बसी हुई सम्पूर्ण कामनाओंको पृथिवीमें गहरे गड़े हुए खूँटोंके समान उखाड़ डालता है। फिर देहाभिमानके विदीर्ण हो जानेपर वह सब प्रकारकी चञ्चलता छोड़ देता है। इस प्रकार वह महात्मा, जिसने कि अनेकों पुण्य किये हैं, आत्मानन्दका आस्वादन करता हुआ नील, श्वेत और अरुणवर्णकी नाडियोंसे मिलकर बने हुए (सुषुम्ना) मार्गद्वारा चूते हुए अमृतरससे पूर्ण अति विचित्र ऊर्ध्वस्थान (सहस्रदलकमल या ब्रह्मरन्ध्र) को प्राप्त हो जाता है ॥४३॥

प्रापश्यद्विश्वमात्मेत्ययमिह पुरुषः शोकमोहाद्यतीतः
शुभ्रं ब्रह्माध्यगच्छत्स खलु सकलवित्सर्वसिद्ध्यास्पदं हि।
विस्मृत्य स्थूलसूक्ष्मप्रभृतिवपुरसौ सर्वसङ्कल्पशून्यो
जीवन्मुक्तस्तुरीयं पदमधिगतवान्पुण्यपापैर्विहीनः ॥४४॥

इस प्रकार जो सम्पूर्ण विश्वको आत्मारूप देखने लगता है वह पुरुष सब प्रकारके शोक और मोह आदिसे पार हो जाता है। उसे शुद्ध ब्रह्मका ज्ञान हुआ है, इसलिये वह सर्वज्ञ और सब प्रकारकी सिद्धियोंका आश्रयस्थान हो गया है। वह जीवन्मुक्त महात्मा इन स्थूल-सूक्ष्मादि शरीरोंको भूलकर सब प्रकारके संकल्पोंसे रहित हो तुरीय पदमें स्थित रहता है। अतः उसे पाप-पुण्यका लेप नहीं होता ॥४४॥

यः सत्त्वाकारवृत्तौ प्रतिफलति युवा देहमात्रावृतोऽपि
तद्धर्मैर्बाल्यवार्द्धक्यादिभिरनुपहतः प्राण आविर्बभूव ।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

श्रेयान्साध्यस्तमेतं सुनिपुणमतयः सत्यसङ्कल्पभाजो
ह्यभ्यासाद्देवयन्तः परिणतमनसा साकमूर्ध्वं नयन्ति॥४५॥

जो आत्मा सत्त्वाकारवृत्तिमें प्रतिबिम्बित हुआ है वही सत्त्वगुण-सम्पन्न प्राण (जीव) रूपसे आविर्भूत हुआ है। वह स्थूल-सूक्ष्मादि देहोंसे आवृत रहनेपर भी उनके धर्म बाल्य एवं वार्धक्य आदिसे किसी प्रकारके विकारको प्राप्त नहीं होता। उसे उत्तम गतिको प्राप्त करा देना चाहिये। सत्य संकल्पवान् और कुशलमति पुरुष इसे अभ्यासद्वारा देवत्वको प्राप्त कराकर अपने संकल्पशून्य चित्तके सहित [सुषुम्ना मार्गद्वारा] ऊपरकी ओर ले जाते हैं ॥४५॥

प्रायोऽकामोऽस्तकामो निरतिशयसुखायात्मकामस्तदासौ
तत्प्राप्तावाप्तकामः स्थितचरमदशस्तस्य देहावसाने।
प्राणा नैवोत्क्रमन्ति क्रमविरतिमिताः स्वस्वहेतौ तदानीं
क्वायं जीवो विलीनो लवणमिव जलेऽखण्ड आत्मैव पश्चात्

[पहले तो] कामनाओंका अस्त होनेके कारण वह प्रायः काम-शून्य होता है, फिर आत्यन्तिक सुखकी इच्छासे केवल आत्माकी ही कामना करता है और उस समय उसकी प्राप्ति हो जानेपर वह पूर्णकाम जीवन्मुक्त महात्मा चरमावस्थामें स्थित होता है। उसका शरीरपात होनेपर उसके प्राण (इन्द्रियवर्ग) अन्य योनियोंमें नहीं जाते। वे क्रमशः अपने-अपने कारणोंमें लीन हो जाते हैं। उस समय

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

यह जीव भी कहाँ रहता है ? फिर तो यह भी जलमें विलीन हुए लवणके समान अखण्ड आत्मा ही है ॥४६॥

पिण्डीभूतं यदन्तर्जलनिधिसलिलं याति तत्सैन्धवाख्यं
भूयः प्रक्षिप्तमस्मिन्विलयमुपगतं नामरूपे जहाति ।
प्राज्ञस्तद्वत्परात्मन्यथ भजति लयं तस्य चेतो हिमांशौ
वागग्नौ चक्षुरर्के पयसि पुनरसृग्रेतसी दिक्षु कर्णौ ॥४७॥

जिस समय समुद्रका जल पिण्डरूपमें आ जाता है तो उसीको नमक कहने लगते हैं । वही फिर समुद्रमें डाल दिया जानेपर उसमें लीन होकर अपने नामरूप छोड़ बैठता है । इसी प्रकार आत्म-वेत्ता परमात्मामें लीन हो जाता है । उस समय उसका चित्त चन्द्रमामें, वाणी अग्निमें, नेत्र सूर्यमें, रुधिर और वीर्य जलमें तथा कर्ण दिशाओंमें लीन हो जाते हैं । [इस प्रकार उसका लिङ्गदेह सदाके लिये छिन्न-भिन्न हो जाता है] ॥४७॥

ब्रह्म ही सारवस्तु है

क्षीरान्तर्यद्वदाज्यं मधुरिमविदितं तत्पृथग्भूतमस्माद्
भूतेषु ब्रह्म तद्वद्व्यवहतिविदितं श्रान्तविश्रान्तिबीजम् ।
यं लब्ध्वा लाभमन्यं तृणमिव मनुते यत्र नोदेति भीतिः
सान्द्रानन्दं यदन्तःस्फुरति तदमृतं विद्ध्यतो ह्यन्यदार्त्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जिस प्रकार दूधके अन्दर मधुरतासे पहचाना हुआ घृत वस्तुतः उससे अलग ही होता है उसी प्रकार जगत्के व्यवहारसे [उसके प्रकाशकरूपसे] जाना गया, श्रान्त पुरुषोंके विश्रामका मूल-कारण ब्रह्म भी वास्तवमें भूतोंसे पृथक् ही है। जिस परमलाभको पाकर मनुष्य अन्य सब प्रकारके सुखोंको तिनकेके समान समझने लगता है तथा जहाँ उसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता उस घनानन्दरूप परमात्माको ही, जो कि सदा अन्तःकरणमें ही स्फुरित होता है, अमृतरूप समझो; उससे भिन्न और सब नाशवान् है ॥४८॥

ओतः प्रोतश्च तन्तुष्विह विततपटश्चित्रवर्णेषु चित्र-
स्तस्मिञ्जिज्ञास्यमाने ननु भवति पटः सूत्रमात्रावशेषः।
तद्वद्विश्वं विचित्रं नगनगरनरग्रामपश्वादिरूपं
प्रोतं वैराजरूपे स वियति तदपि ब्रह्मणि प्रोतमोतम् ॥४९॥

एक लंबा-चौड़ा रंग-बिरंगा कपड़ेका थान कई रंगके धागोंमें ही ओतप्रोत रहता है; यदि उसके वास्तविक स्वरूपकी खोज की जाय तो वह वस्त्र तन्तुरूप ही बच रहता है। उसी प्रकार पर्वत, नगर, मनुष्य, ग्राम और पशु आदि रूप यह विचित्र जगत् भी विराट् रूपमें ही ओतप्रोत है और वह विराट् आकाशमें तथा आकाश ब्रह्ममें ओतप्रोत है [इस प्रकार परमार्थतः यह ब्रह्मरूप ही है।] ॥४९॥

रूपं रूपं प्रतीदं प्रतिफलनवशात्प्रातिरूप्यं प्रपेदे
ह्येको द्रष्टा द्वितीयो भवति च सलिले सर्वतोऽनन्तरूपः।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

**इन्द्रो मायाभिरास्ते श्रुतिरिति वदति व्यापकं ब्रह्म तस्मा-
ज्जीवत्वं यात्यकस्मादतिविमलतरे बिम्बितं बुद्ध्युपाधौ ५०**

यह ब्रह्मतत्त्व प्रतिबिम्बित होनेके कारण ही भिन्न-भिन्न उपाधियोंमें भिन्न-भिन्न रूप हो गया है; जिस प्रकार जलमें प्रतिबिम्ब पड़नेपर एक द्रष्टा ही दूसरा रूप धारण कर लेता है। श्रुति कहती है कि 'इन्द्र नामक परमात्मा ही मायासे सब ओर अगणित रूपवाला हो गया है।' इससे सिद्ध होता है कि बुद्धिरूप अत्यन्त स्वच्छ उपाधिमें अकस्मात् प्रतिबिम्बित हुआ व्यापक ब्रह्म ही जीवभावको प्राप्त हो गया है ॥५०॥

उपाधिसे ब्रह्मकी असंगता

**तज्ज्ञाः पश्यन्ति बुद्ध्या परमबलवतो माययाक्तं पतङ्गं
बुद्ध्यावन्तःसमुद्रे प्रतिफलितमरीच्यास्पदं वेधसस्तम् ।
यादृग्यावानुपाधिः प्रतिफलति तथा ब्रह्म तस्मिन्यथास्यं
प्राप्तादर्शानुरूपं प्रतिफलति यथावस्थितं सत्सदैव ॥५१॥**

तत्त्वज्ञ लोग अपनी विशुद्ध बुद्धिसे देखते हैं कि अति बलवान् विधाताकी मायासे व्याप्त यह जीव बुद्धिरूप समुद्रमें प्रतिबिम्बित हुई परमात्मसूर्यकी किरणरूप ही है। जिस प्रकार मुख दर्पणके अनुसार ही [छोटा, बड़ा, स्वच्छ अथवा मलिनरूपसे] प्रतिबिम्बित होता है उसी प्रकार ब्रह्म भी अपनी उपाधिके अनुसार ही प्रतिफलित होता है; किन्तु वह स्वतः ज्यों-का-त्यों ही रहता है ॥५१॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection, TN.

Digitization by eGangotri-South Center

एको भानुस्तदर्थप्रतिफलनवशाद्यस्त्वनेकोदकान्त-
र्नानात्वं यात्युपाधिस्थितिगतिसमतां चापि तद्वत्परात्मा ।
भूतेषूच्चावचेषु प्रतिफलित इवाभाति तावत्स्वभावा-
वच्छिन्नो यः परं तु स्फुटमनुपहतो भाति तावत्स्वभावैः ॥

जिस प्रकार एक ही सूर्य जलके अनेक पात्रोंमें प्रतिबिम्बित होनेसे अनेक तथा उन उपाधियोंकी स्थिति एवं गतिकी समताको भी प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार छोटे-बड़े प्राणियोंमें प्रतिबिम्बित हुआ-सा परमात्मा भी उन्हींके-से स्वभाववाला जान पड़ता है । किन्तु ज्ञानियों-को वह उनके स्वभावोंसे सर्वथा अछूता दिखायी देता है ॥५२॥

ब्रह्म ही सबका प्रकाशक और आश्रय है

यद्वत्पीयूषरश्मौ दिनकरकिरणैर्बिम्बितैरेति सान्द्रं
नाशं नैशं तमिस्रं गृहगतमथवा मूर्च्छितैः कांस्यपात्रे ।
तद्वद्बुद्धौ परात्मद्युतिभिरनुपदं बिम्बिताभिः समन्ता-
द्भासन्ते हीन्द्रियास्यप्रसृतिभिरनिशं रूपमुख्याः पदार्थाः ॥

जिस प्रकार चन्द्रमामें प्रतिबिम्बित हुई सूर्यकी किरणोंसे रात्रिका घोर अन्धकार नष्ट हो जाता है तथा काँसीके पात्रमें पड़नेपर उन्हींसे घरका अँधेरा दूर होता है, उसी प्रकार बुद्धिमें प्रतिबिम्बित हुए परमात्माके तेजसे ही, जब वह इन्द्रियरूप द्वारोंसे बाहर निकलता है, तो ये रूप-रस आदि सम्पूर्ण पदार्थ भासित होते हैं ॥५३॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

पूर्णात्मानात्मभेदात्त्रिविधमिह परं बुद्ध्यवच्छिन्नमन्य-
त्तत्रैवाभासमात्रं गगनमिव जले त्रिप्रकारं विभाति।
अम्भोऽवच्छिन्नमस्मिन्प्रतिफलितमतः पाथसोऽन्तर्बहिश्च
पूर्णावच्छिन्नयोगे व्रजति लयमविद्या स्वकार्यैः सहैव ।५४।

इस उपाधिमें ही ब्रह्मकी तीन प्रकारसे प्रतीति होती है—एक पूर्ण, दूसरा आत्मा और तीसरा अनात्मा । जो बुद्धिरूप उपाधिसे परे [अर्थात् उसके बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त] है उसे पूर्ण कहते हैं, बुद्ध्यवच्छिन्न-का नाम आत्मा है और बुद्धिमें प्रतिबिम्बित आभास ही अनात्मा है, जैसे कि जलमें जलावच्छिन्न, जलमें प्रतिबिम्बित और जलके बाहर-भीतर व्याप्त—ये आकाशके तीन भेद देखे जाते हैं । इनमें पूर्ण और बुद्ध्यवच्छिन्नकी एकता हो जानेपर [बुद्धिरूप] अविद्या [आभासादि] अपने कार्योंके सहित लीन हो जाती है ॥ ५४ ॥

दृश्यन्ते दारुनार्यो युगपदगणिताः स्तम्भसूत्रप्रयुक्ताः
संगीतं दर्शयन्त्यो व्यवहृतिमपरां लोकसिद्धां च सर्वाम् ।
सर्वत्रानुप्रविष्टादभिनवविभवाद्यावदर्थानुबन्धा-
त्तद्वत्सूत्रात्मसंज्ञाद्व्यवहरति जगद्भूर्भुवः स्वर्महान्तम् ।५५।

देखते हैं कि स्तम्भसूत्रसे प्रेरित हुई अगणित कठपुतलियाँ सङ्गीत तथा अन्य सब प्रकारके लोकसिद्ध व्यापार दिखलाया करती हैं । उसी प्रकार भूः भुवः स्वः तथा महर्लोकपर्यन्त यह सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जगत् सर्वत्र अनुप्रविष्ट हुए अतर्क्य-वैभवशाली तथा प्रयोजनके अनुसार सम्पूर्ण पदार्थोंके व्यवहारमें नियमित सम्बन्ध रखनेवाले सूत्रात्मासंज्ञक परमात्माकी ही प्रेरणासे व्यवहार कर रहा है ॥ ५५ ॥

तत्सत्यं यत्त्रिकालेष्वनुपहतमदः प्राणदिग्व्योममुख्यं
यस्मिन्विश्रान्तमास्ते तदिह निगदितं ब्रह्म सत्यस्य सत्यम् ।
नास्त्यन्यत्किं च यद्वत्परमधिकमतो नाम सत्यस्य सत्यं
सच्च त्यच्चेति मूर्ताद्युपहितमवरं सत्यमस्यापि सत्यम् ।५६।

जिनका तीनों कालमें कभी बाध नहीं होता वे प्राण दिशा और आकाश आदि 'सत्य' कहलाते हैं, और जिसमें ये सब विश्राम ले रहे हैं वह ब्रह्म 'सत्यका भी सत्य' कहा गया है। अथवा उसके समान उत्कृष्ट और कोई सत्य नहीं है इसलिये ब्रह्म 'सत्यका सत्य' कहलाता है। सत् और त्यत् कहलानेवाले मूर्त और अमूर्त पदार्थों-का आश्रयभूत [शबलब्रह्म] भी इससे नीचे ही है। वह सत्य (सत्य-स्वरूप ब्रह्म) तो इसका भी सत्य है ॥ ५६ ॥

यत्किञ्चिद्भात्यसत्यं व्यवहृतिविषये रौप्यसर्पाम्बुमुख्यं
तद्धै सत्याश्रयेणेत्ययमिह नियमः सावधिर्लोकसिद्धः ।
तद्धै सत्यस्य सत्ये जगदखिलमिदं ब्रह्मणि प्राविरासी-
न्मिथ्याभूतं प्रतीतं भवति खलु यतस्तच्च सत्यं वदन्ति ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

लोक-व्यवहारमें शुक्तिरजत रज्जुसर्प और मृगजल आदि जो कुछ असत्य पदार्थ भासते हैं वे किसी-न-किसी सत्य वस्तुके आश्रयसे ही प्रतीत हुआ करते हैं—यह सावधि नियम* लोकमें देखा गया है। इसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् उस सत्यके भी सत्य परब्रह्ममें प्रादुर्भूत हुआ है। [अतः ब्रह्म सत्य और यह जगत् प्रातिभासिक है] अथवा जिसके आश्रयसे कोई मिथ्या पदार्थ प्रतीत हो उसीको 'सत्य' कहते हैं [यह भी सत्यकी परिभाषा है] ॥ ५७ ॥

यत्राकाशावकाशः कलयति च कलामात्रतां यत्र कालो
यत्रैवाशावसानं बृहदिह हि विराट्पूर्वमर्वागिवास्ते ।
सूत्रं यत्राविरासीन्महदपि महतस्तद्धि पूर्णाच्च पूर्णं
संपूर्णादर्णवादेरपि भवति यथा पूर्णमेकार्णवाम्भः ॥५८॥

जहाँ आकाशको भी अवकाश मिलता है, जिसकी काल भी एक कलामात्र ठहरता है, जिसमें सभी दिशाएँ समाप्त हो जाती हैं ऐसे विशाल विराट् ब्रह्म भी जिसके सामने बहुत छोटे-से जान पड़ते हैं, जिससे महान्‌से महान् सूत्रात्माका भी प्रादुर्भाव हुआ है वह ब्रह्म ही पूर्णसे भी पूर्ण है जिस प्रकार एक पूर्ण समुद्रसे भी सात समुद्रोंसे मिलकर बने हुए [प्रलयकालिक एकार्णव] एक समुद्रका जल अधिक पूर्ण माना जाता है ॥ ५८ ॥

अन्तः सर्वौषधीनां पृथगमितरसैर्गन्धवीर्यैर्विपाकै-
रेकं पाथोदपाथः परिणमति यथा तद्वदेवान्तरात्मा ।

---

* इस नियमको सावधि इसलिये कहा है कि उन असत्य पदार्थोंका, उनके अधिष्ठानका ज्ञान होते ही, बाध हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

नानाभूतस्वभावैर्वहति वसुमती येन विश्वं पयोदो
वर्षत्युच्चैर्हुताशः पचति दहति वा येन सर्वान्तरोऽसौ ॥५९॥

जिस प्रकारसे मेघसे बरसा हुआ एक ही जल सम्पूर्ण ओषधियोंके भीतर [उनके अनुसार] अलग-अलग अनेक प्रकारके रस, गन्ध, गुण और विपाकोंमें परिणत हो जाता है उसी प्रकार एक ही अन्तरात्मा अनेक भूतोंके स्वभावोंमें परिणत हो जाता है । जिसकी प्रेरणासे पृथिवी सबको धारण करती है, मेघ सम्पूर्ण जगत्‌में वर्षा करता है, अग्नि [अन्नादिको] पकाता एवं [ईंधन आदिको] जलाता है, वह परमात्मा ही सबका अन्तर्यामी है ॥ ५९ ॥

सब ब्रह्मरूप ही है

भूतेष्वात्मानमात्मन्यनुगतमखिलं भूतजातं प्रपश्ये-
त्प्रायः पाथस्तरङ्गान्वयवदथ चिरं सर्वमात्मैव पश्येत् ।
एकं ब्रह्माद्वितीयं श्रुतिशिरसि मतं नेह नानास्ति किञ्चि-
न्मृत्योराप्नोति मृत्युं स इह जगदिदं यस्तु नानेव पश्येत् ॥

विवेकी पुरुषको चाहिये कि सम्पूर्ण भूतोंमें अपने आत्माको और सम्पूर्ण भूतोंको अपने आत्मामें देखे । फिर जल और तरङ्गके अभेदके समान चिरकालतक सम्पूर्ण जगत्‌को आत्मारूप ही देखता रहे । उपनिषद्‌का यही मत है कि 'एक अद्वितीय ब्रह्म ही है' जगत्‌में नाना पदार्थ कुछ नहीं है; जो पुरुष इस जगत्‌को नानारूप देखता है वह मृत्युके पश्चात् मृत्युको प्राप्त होता रहता है ॥ ६० ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

प्राक्पश्चादस्ति कुम्भाद्गगनमिदमिति प्रत्यये सत्यपीदं
कुम्भोत्पत्तावुदेति प्रलयमुपगते नश्यतीत्यन्यदेशम् ।
नीते कुम्भेन साकं व्रजति भजति वा तत्प्रमाणानुकारा-
विस्थं मिथ्याप्रतीतिः स्फुरति तनुभृतां विश्वतस्तद्वदात्मा ॥

यद्यपि यह बात सभी लोग जानते हैं कि आकाश घड़ेके बननेसे पहले तथा पीछे भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है, तो भी देहधारियोंको यह मिथ्या ज्ञान होता ही है कि यह घटाकाश घटके उत्पन्न होनेपर उत्पन्न होता है और नष्ट होनेपर नष्ट हो जाता है तथा घटको अन्यत्र ले जानेपर उसके साथ जाता है और उसके छोटे-बड़े आकारके अनुसार स्वयं भी छोटा-बड़ा हो जाता है । उसी प्रकार आत्मा विश्वोत्पत्तिके पहले और पीछे भी रहता है, यह जाननेपर भी जगत्के पदार्थोंके अनुसार परिणामी-सा प्रतीत होता है ॥ ६१ ॥

यावान्पिण्डो गुडस्य स्फुरति मधुरिमैवास्ति सर्वोऽपि तावा-
न्यावान्कर्पूरपिण्डः परिणमति सदामोद एवात्र तावान् ।
विश्वं यावद्विभाति द्रुमनगनगरारामचैत्याभिरामं
यावच्चैतन्यमेकं प्रविकसति यतोऽन्ते तदात्मावशेषम् ॥

गुड़का पिण्ड जितना बड़ा दिखायी देता है वह सब-का-सब केवल मधुरिमा ही है तथा कर्पूरखण्ड भी जितना कुछ है उस रूपमें परिणत हुआ सुगन्ध ही है । इसी प्रकार वृक्ष, पर्वत, नगर, बाग और मन्दिर आदिसे सुशोभित यह जितना जगत् दिखायी

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

देता है वह सब एकमात्र चैतन्यका ही विकास है, क्योंकि अन्तमें वह आत्मस्वरूप ही रह जायगा ॥ ६२ ॥

वाद्यान्नादानुभूतिर्यदपि तदपि सा नूनमाघातगम्या
वाद्याघातध्वनीनां न पृथगनुभवः किं तु तत्साहचर्यात् ।
मायोपादानमेतत्सहचरितमिव ब्रह्मणाभाति तद्व-
त्तस्मिन्प्रत्यक्प्रतीते न किमपि विषयीभावमाप्नोति यस्मात्

बाजेसे जो नादका अनुभव होता है वह अवश्य ही आघातजनित होता है। उसमें बाजे, आघात और ध्वनि—इनमेंसे प्रत्येकका पृथक्-पृथक् अनुभव नहीं हो सकता, बल्कि सबका मिलकर ही होता है। उसी प्रकार, जिसका उपादान कारण माया ही है ऐसा यह जगत् ब्रह्मसे हिला-मिला ही प्रतीत होता है। किन्तु जिस समय उस प्रत्यगात्माका साक्षात्कार हो जाता है उस समय [उसमें अध्यस्त हुए इस जगत्का] कुछ भी भान नहीं होता ॥ ६३ ॥

दृष्टः साक्षादिदानीमिह खलु जगतामीश्वरः संविदात्मा
विज्ञातः स्थाणुरेको गगनवदभितः सर्वभूतान्तरात्मा ।
दृष्टं ब्रह्मातिरिक्तं सकलमिदमसद्रूपमाभासमात्रं
शुद्धं ब्रह्माहमस्मीत्यविरतमधुनात्रैव तिष्ठेदनीहः ॥६४॥

अब आप सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर ज्ञानस्वरूप परमात्माका साक्षात् दर्शन कर चुके, आपने सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तरात्मा और

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

आकाशके समान निश्चल अद्वितीय ब्रह्मको जान लिया और आपने यह भी खूब देख लिया कि ब्रह्मसे अतिरिक्त यह सकल जगत् असत्य और आभासमात्र है। अतः अब आपको निरन्तर 'मैं शुद्ध ब्रह्म ही हूँ' इस निष्ठामें ही निरीह होकर डटा रहना चाहिये ॥ ६४ ॥

आनन्दमय कोशका स्वरूप

इन्द्रेन्द्राण्योः प्रकामं सुरतसुखजुषोः स्याद्गतान्तःसुषुप्ति-
स्तस्यामानन्दसान्द्रं पदमतिगहनं यत्स आनन्दकोशः ।
तस्मिन्नो वेद किञ्चिन्निरतिशयसुखाभ्यन्तरे लीयमानो
दुःखी स्याद्बोधितः सन्निति कुशलमतिर्बोधयेन्नैव सुप्तम् ॥

जिस समय इन्द्र [दक्षिण नेत्रमें रहनेवाला पुरुष] और इन्द्राणी [वाम नेत्रमें रहनेवाली अर्थावभासक ज्योति] को [स्वप्नावस्थामें हृदयाकाशमें स्थित होकर] सुरतसुख (साङ्कल्पिक भोगों) को भोगते-भोगते उसकी अन्तिम अवस्था प्राप्त होती है तो उसे सुषुप्ति कहते हैं। उसमें जो एक घनीभूत आनन्दमयी अति गम्भीर अवस्था होती है उसीका नाम आनन्दमय कोश है। उस अवस्थामें आत्यन्तिक सुखमें लीन हो जानेके कारण इस जीवको किसी बातका ज्ञान नहीं रहता। उस समय जगानेपर उसे दुःख होता है, इसलिये बुद्धिमान् पुरुष सोये हुए व्यक्तिको कभी न जगावे ॥ ६५ ॥

सर्वे नन्दन्ति जीवा अधिगतयशसा गृह्णता चक्षुरादी-
नन्तः सर्वोपकर्त्रा बहिरपि च सुषुप्तौ यथा तुल्यसंस्थाः ।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

एतेषां किल्बिषस्पृग्जठरभृतिकृते यो बहिर्वृत्तिरास्ते
त्वक्चक्षुःश्रोत्रनासारसनवशमितो याति शोकं च मोहम्॥

अन्दरसे चक्षु आदि इन्द्रियोंको ग्रहण करते हुए और बाहरसे विषय-भोग देकर सबका उपकार करनेवाले ब्रह्मके प्राप्त हो जानेपर सभी जीव आनन्दित हो जाते हैं, जिस प्रकार कि सुषुप्तिमें सभी जीव उसमें समान भावसे स्थित हो आनन्दित होते हैं। जो जीव [इस ब्रह्मानन्दको छोड़कर] पेट पालनेके लिये बहिर्वृत्ति करता है वह इन (बाह्य विषयों) के दुःखका भागी बनता है और त्वचा, चक्षु, श्रोत्र, नासिका एवं रसनाके वशीभूत होकर शोक तथा मोहको प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥

जाग्रत्यामन्तरात्मा विषयसुखकृतेऽनेकयत्नान्विधास्यञ्
श्राम्यत्सर्वेन्द्रियौघोऽधिगतमपि सुखं विस्मरन्याति निद्राम्
विश्रामाय स्वरूपे त्वतितरसुलभं तेन चातीन्द्रियं हि
सौख्यं सर्वोत्तमं स्यात् परिणतिविरसादिन्द्रियोत्थात्सुखाच्च

जब जाग्रत्-अवस्थामें विषय-सुखके लिये अनेकों यत्न करते हुए इस अन्तरात्माकी सभी इन्द्रियाँ थक जाती हैं तो अपनेको प्राप्त हुए सुखोंको भी भूलकर स्वरूपमें विश्राम लेनेके लिये नींद लेने लगता है। इसलिये परिणाममें नीरस हो जानेवाले सब इन्द्रियजन्य सुखोंसे यह अतीन्द्रिय सुख परम उत्तम और अत्यन्त सुलभ है ॥ ६७ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

पक्षावभ्यस्य पक्षी जनयति मरुतं तेन यात्युच्चदेशं
लब्ध्वा वायुं महान्तं श्रममपनयति स्वीयपक्षौ प्रसार्य।
दुःसङ्कल्पैर्विकल्पैर्विषयमनु कदर्थीकृतं चित्तमेत-
त्खिन्नं विश्रामहेतोः स्वपिति चिरमहो हस्तपादान्प्रसार्य ॥

जैसे पक्षी पहले तो अपने पंखोंको हिलाकर वायु उत्पन्न करता है; फिर जब उसके द्वारा ऊँचा चढ़ जाता है और उसे महान् वायु मिल जाता है तो वह पंख फैलाकर अपना श्रम दूर करने लगता है उसी प्रकार जब विषयोंके लिये नाना प्रकारके दुष्ट संकल्प-विकल्प करते हुए यह चित्त थक जाता है तो खिन्न होकर विश्राम लेनेके लिये अपने हाथ-पाँव फैलाकर चिरकालतक सोता रहता है ॥ ६८ ॥

आश्लिष्यात्मानमात्मा न किमपि सहसैवान्तरं वेद बाह्यं
यद्वत्कामी विदेशात्सदनमुपगतो गाढमाश्लिष्य कान्ताम्
यात्यस्तं तत्र लोकव्यवहृतिरखिला पुण्यपापानुबन्धः
शोको मोहो भयं वा समविषममिदं न स्मरत्येव किञ्चित् ॥

जिस प्रकार कामी पुरुषको विदेशसे घर लौटनेपर अपनी प्रियाका गाढ़ आलिङ्गन करके बाहर-भीतरके अन्य विषयोंकी सुध नहीं रहती उसी प्रकार [सुषुप्तिमें] आत्माका सहसा आलिङ्गन करके जीव बाहर-भीतरकी सब सुध-बुध भूल जाता है। उस समय सारा लोक-व्यवहार और पुण्य-पापका बखेड़ा शान्त हो जाता है तथा शोक, मोह, भय और इस सम-विषमकी तनिक भी याद नहीं आती ॥६९॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN:

Digitization by eGangotri-South Center

सुषुप्ति और जीवन्मुक्तिका भेद

अल्पानल्पप्रपञ्चप्रलय उपरतिश्चेन्द्रियाणां सुखाप्ति-
र्जीवन्मुक्तौ सुषुप्तौ त्रितयमपि समं किं तु तत्रास्ति भेदः।
प्राक्संस्कारात्प्रसुप्तः पुनरपि च परावृत्तिमेति प्रबुद्धो
नश्यत्संस्कारजातो न स किल पुनरावर्तते यश्च मुक्तः ७०

स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चका लय, इन्द्रियोंकी उपरामता और आनन्दकी उपलब्धि—ये तीनों बातें जीवन्मुक्ति और सुषुप्तिमें समान ही हैं; किन्तु उनमें एक भेद है। वह यह कि सोया हुआ पुरुष अपने पूर्वसंस्कारोंके कारण जगनेपर उस अवस्थासे लौट आता है, किन्तु जो मुक्त हो गया है उसके सब संस्कार नष्ट हो गये होते हैं, इसलिये उसका पुनरावर्तन नहीं होता ॥ ७० ॥

आत्मानन्दकी उत्कृष्टता

आनन्दान्यश्च सर्वाननुभवति नृपः सर्वसम्पत्समृद्ध-
स्तस्यानन्दः स एकः स खलु शतगुणः सन्प्रदिष्टः पितॄणाम्
आदेवब्रह्मलोकं शतशतगुणितास्ते यदन्तर्गताः स्यु-
र्ब्रह्मानन्दः स एकोऽस्त्यथ विषयसुखान्यस्य मात्रा भवन्ति॥

सब प्रकारके वैभवसे सम्पन्न कोई राजा जिस आनन्दका अनुभव करता है वह उसका एक आनन्द है [जो अन्य साधारण

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

पुरुषोंके सुखके सामने सैकड़ोंगुना होता है] । वही सौगुना होनेपर पितृगणका एक आनन्द होता है । इसी प्रकार देवलोकसे लेकर ब्रह्म-लोकतकके सम्पूर्ण आनन्द एक-दूसरेसे सौगुने होते हुए जिस परम सुखमें समा जाते हैं वह एक ब्रह्मानन्द कहलाता है । ये विषयसुख तो उसके अत्यन्त तुच्छ अंशमात्र हैं ॥ ७१ ॥

यत्रानन्दाश्च मोदाः प्रमुद इति मुदश्चासते सर्व एते
यत्राप्ताः सर्वकामाः स्युरखिलविरमात्केवलीभाव आस्ते ।
मां तत्रानन्दसान्द्रे कृधि चिरममृतं सोम पीयूषपूर्णां
धारामिन्द्राय देहीत्यपि निगमगिरो भ्रूयुगान्तर्गताय ।७२।

'जिसमें ये सभी आनन्द, सभी मोद, सभी प्रमोद और मुद स्थित हैं, जिसमें स्थित होनेपर सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं और सम्पूर्ण प्रपञ्चका निराकरण हो जानेसे केवलीभावकी प्राप्ति हो जाती है, हे सोम ! उस आनन्दघनमें आप मुझ (जीव) को चिरकाल-तक स्थिर रखिये और इस प्रकार भ्रूयुगलके बीचमें स्थित हो जानेपर मुझपर अमृतपूर्ण जलकी वर्षा कीजिये'—ऐसा भी वेदने कहा है ॥७२॥

आत्माकम्पः सुखात्मा स्फुरति तदपरा त्वन्यथैव स्फुरन्ती
स्थैर्यं वा चञ्चलत्वं मनसि परिणतिं याति तत्रत्यमस्मिन् ।
चाञ्चल्यं दुःखहेतुर्मनस इदमहो यावदिष्टार्थलब्धि-
स्तस्यां यावत्स्थिरत्वं मनसि विषयजं स्यात्सुखं तावदेव७३

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

आत्मा निष्कम्प और सुखस्वरूपसे स्फुरित है और प्रकृति इसके सर्वथा विपरीत भासती है; किन्तु मनमें इनके स्थिरता और चञ्चलत्व दोनों ही गुण दिखायी देते हैं। इनमें चञ्चलता चित्तके दुःखका कारण है और इष्ट पदार्थके मिलनेपर जितनी ही चित्तकी स्थिरता होती है उतना ही उसे विषयजनित सुख मिलता है ॥ ७३ ॥

यद्वत्सौख्यं रतान्ते निमिषमिह मनस्येकताने रसे स्या-
त्स्थैर्यं यावत्सुषुप्तौ सुखमनतिशयं तावदेवाथ मुक्तौ ।
नित्यानन्दः प्रशान्ते हृदि तदिह सुखस्थैर्ययोः साहचर्यं
नित्यानन्दस्य मात्रा विषयसुखमिदं युज्यते तेन वक्तुम् ॥

जिस प्रकार रमणके अन्तमें रसमें चित्तके एकाग्र हो जानेपर क्षणभरके लिये सुख प्राप्त होता है तथा जितनी देर गाढ़ निद्रा रहती है उतनी ही देर निरतिशय सुख प्राप्त होता रहता है उसी प्रकार मुक्तिमें भी हृदयके शान्त हो जानेसे नित्य सुखका अनुभव होता है। इस प्रकार सदा ही सुख और स्थिरताका साथ है, अतः यह कहना उचित ही है कि ये सब विषय-सुख उस नित्यानन्दके ही अंश हैं ॥ ७४ ॥

श्रान्तं स्वान्तं सबाह्यव्यवहृतिभिरिदं ताः समाकृष्य सर्वा-
स्तत्तत्संस्कारयुक्तं ह्युपरमति परावृत्तमिच्छन्निदानम् ।
स्वाप्नान्संस्कारजातप्रजनितविषयान्स्वाप्नदेहेऽनुभूता-
न्प्रोज्झ्यान्तः प्रत्यगात्मप्रवणमिदमगाद्भूरि विश्राममस्मिन्

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

बाह्य व्यापारोंसे थका हुआ यह अन्तःकरण उन सबको समेटकर उनके संस्कारोंको अपने साथ ले अपने आदिकारण आत्मा-से मिलनेके लिये उत्कण्ठित होकर उन विषयोंसे हटकर उपरत होता है। फिर उन संस्कारोंसे उत्पन्न हुए स्वप्नकालीन भोगोंको, जिन्हें वह अपने स्वप्नशरीरसे भोगता है, त्यागकर अन्तरात्माकी ओर प्रवृत्त होता हुआ उसमें अत्यन्त विश्रान्त हो जाता है ॥ ७५ ॥

स्वप्नविषयक शंका

स्वप्ने भोगः सुखादेर्भवति ननु कुतः साधने मूर्च्छमाने
स्वाप्नं देहान्तरं तद्व्यवहृतिकुशलं नव्यमुत्पद्यते चेत्।
तत्सामग्र्या अभावात्कुत इदमुदितं तद्धि साङ्कल्पिकं चे-
त्तत्किं स्वाप्ने रतान्ते वपुषि निपतिते दृश्यते शुक्रमोक्षः ॥

स्वप्नमें भोगका साधनरूप स्थूल देह तो अचेत हो जाता है, फिर उस समय सुखादिका भोग कैसे होता है? यदि कहो कि उस समय इस व्यवहारके योग्य एक नवीन स्वप्नशरीर उत्पन्न होता है तो उसकी सामग्रीका तो सर्वथा अभाव है, फिर यह उत्पन्न कहाँसे होता है? यदि यह माना जाय कि वह केवल संकल्पजनित ही है तो स्वप्नावस्थाके रमणके अनन्तर इस अचेत पड़े हुए स्थूल शरीरमें वीर्यपात होता कैसे देखा जाता है? ॥ ७६ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

शंकाका परिहार

भीत्या रोदित्यनेन प्रवदति हसति श्लाघते नूनमस्मात्
स्वप्नेऽप्यङ्गेऽनुबन्धं त्यजति न सहसा मूर्च्छितेऽप्यन्तरात्मा
पूर्वं ये येऽनुभूतास्तनुयुवतिहयव्याघ्रदेशादयोऽर्था-
स्तत्संस्कारस्वरूपान्सृजति पुनरमूञ्छ्रित्य संस्कारदेहम् ॥७७

[स्वप्नकालमें इस शरीरसे वीर्यपात होता है—केवल इतना ही नहीं, बल्कि] इसीसे भयवश कभी रोता है, कभी बड़बड़ाने लगता है तथा कभी हँसता और कभी अपनेको कृतकृत्य मानने लगता है। अपनी पूर्व (जाग्रत्) अवस्थामें इसने जिन शरीर, युवती, अश्व, व्याघ्र एवं देश आदि पदार्थोंका अनुभव किया होता है अपने संस्कार-शरीरका आश्रय लेकर यह उन्हें फिर रच लेता है ॥ ७७ ॥

सन्धौ जाग्रत्सुषुप्त्योरनुभवविदिता स्वाप्न्यवस्था द्वितीया
तत्रात्मज्योतिरास्ते पुरुष इह समाकृष्य सर्वेन्द्रियाणि ।
संवेश्य स्थूलदेहं समुचितशयने स्वीयभासान्तरात्मा
पश्यन्संस्काररूपानभिमतविषयान्याति कुत्रापि तद्वत् ॥७८॥

जाग्रत् और सुषुप्ति-अवस्थाकी सन्धिमें इनसे भिन्न स्वप्ना-वस्थाका अनुभव हुआ करता है। उस अवस्थामें यह पुरुष अपनी सब इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटाकर 'आत्मज्योति' हो जाता है [अर्थात् इन्द्रियोंके बिना स्वयं ही विषयोंको ग्रहण करता है] उस

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

समय यह अन्तरात्मा अपने स्थूल शरीरको किसी सुन्दर शय्यापर सुलाकर अपने संस्काररूप अभिमत विषयोंको देखता हुआ कहीं विचरता रहता है ॥ ७८ ॥

रक्षन्प्राणैः कुलायं निजशयनगतं श्वासमात्रावशेषै-
र्माभूत्तत्प्रेतकल्पाकृतिकमिति पुनः सारमेयादिभक्ष्यम् ।
स्वप्ने स्वीयप्रभावात्सृजति हयरथान्निम्नगाः पल्वलानि
क्रीडास्थानान्यनेकान्यपि सुहृदबलापुत्रमित्रानुकारान् ७९

तथा अपने शय्यागत शरीरको केवल श्वास-प्रश्वासमात्र रहे हुए प्राणोंकी रक्षामें छोड़ देता है, जिससे मृतकवत् हो जानेके कारण उसे कुत्ते आदि न खा जायँ । यह स्वप्नावस्थामें अपने ही प्रभावसे घोड़े, रथ, नदी, तालाब, अनेक प्रकारके क्रीडास्थान, सुहृद्, स्त्री, पुत्र, मित्रादिके समान अन्य पदार्थ रच लेता है ॥ ७९ ॥

मातङ्गव्याघ्रदस्युद्विषदुरगकपीन्कुत्रचित्प्रेयसीभिः
क्रीडन्नास्ते हसन्वा विहरति कुहचिन्मृष्टमश्नाति चान्नम् ।
म्लेच्छत्वं प्राप्तवानस्म्यहमिति कुहचिच्छङ्कितः स्वीयलोका-
दास्ते व्याघ्रादिभीत्या प्रचलति कुहचिद्रोदिति ग्रस्यमानः॥

यही नहीं, वह हाथी, व्याघ्र, लुटेरे, सर्प और वानरोंकी भी रचना कर लेता है । उस अवस्थामें वह कभी तो अपनी संकल्प-जनित प्रियाओंके साथ क्रीडा, उपहास और विहार करने लगता है,

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

कभी स्वादिष्ट भोजन करता है, कभी 'अहो ! मैं तो म्लेच्छ हो गया' यह समझकर अपने साथियोंसे संकुचित होने लगता है तथा कभी व्याघ्रादिसे डरकर भागता है और कभी उनके पञ्जेमें पड़कर रोने लगता है ॥ ८० ॥

संसारकी स्वप्नतुल्यता

यो यो दृग्गोचरोऽर्थो भवति स स तदा तद्गतात्मस्वरूपा-
विज्ञानोत्पद्यमानः स्फुरति ननु यथा शुक्तिकाज्ञानहेतुः ।
रौप्याभासो मृषैव स्फुरति च किरणाज्ञानतोऽम्भो भुजङ्गो
रज्ज्वज्ञानान्निमेषं सुखभयकृदतो दृष्टिसृष्टं किलेदम् ॥ ८१ ॥

जिस प्रकार शुक्तिके अज्ञानसे रजतकी, सूर्यकी किरणोंके अज्ञानसे जलकी तथा रज्जुके अज्ञानसे सर्पकी प्रतीति होती है उसी प्रकार संसारमें जो-जो पदार्थ देखे जाते हैं वे उसमें स्थित आत्मस्वरूपके अज्ञानसे ही उत्पन्न होकर प्रतीत होने लगते हैं । और उन शुक्ति, रजत, मृगजल तथा रज्जुसर्पके समान ही सुख अथवा भयके कारण हो जाते हैं । अतः यह सम्पूर्ण संसार भी दृष्टिसृष्ट ही है ॥ ८१ ॥

मायाध्यासाश्रयेण प्रविततमखिलं यन्मया तेन मत्स्था-
न्येतान्येतेषु नाहं यदपि हि रजतं भाति शुक्तौ न रौप्ये ।
शुक्त्यंशस्तेन भूतान्यपि मयि न वसन्तीति विष्वग्विनेता
प्राहास्माद्दृश्यजातं सकलमपि मृषैवेन्द्रजालोपमेयम् ॥ ८२ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

मायारूप अध्यासका आश्रयभूत यह सम्पूर्ण प्रपञ्च मैंने ही विस्तारित किया है। इसलिये ये सब पदार्थ मुझहीमें स्थित हैं, किन्तु मैं इनमें नहीं हूँ। जिस प्रकार रजत ही शुक्तिमें भासित हुआ करती है, रजतमें शुक्तिका कोई अंश नहीं रहता। इसीलिये विष्वक्सेन (भगवान् कृष्ण) ने कहा है कि 'ये भूत भी मुझमें नहीं बसते हैं' अतः यह सम्पूर्ण दृश्य भी इन्द्रजालके समान मिथ्या ही है ॥ ८२ ॥

कर्मफलदाता ईश्वर ही है

हेतुः कर्मैव लोके सुखतदितरयोरेवमज्ञोऽविदित्वा
मित्रं वा शत्रुरित्थं व्यवहरति मृषा याज्ञवल्क्यार्तभागौ।
यत्कर्मैवोचतुः प्राग्जनकनृपगृहे चक्रतुस्तत्प्रशंसां
वंशोत्तंसो यदूनामिति वदति न कोऽप्यत्र तिष्ठत्यकर्मा ८३

संसारमें सुख-दुःखकी प्राप्तिका कारण कर्म ही है—इस बातको न जाननेके कारण अज्ञजन वृथा ही शत्रु-मित्रका व्यवहार किया करते हैं। पूर्वकालमें राजा जनकके यहाँ याज्ञवल्क्य और आर्त्तभाग मुनिने भी कर्मका प्रतिपादन करते हुए उसीकी प्रशंसा की थी*। तथा यदुकुलभूषण श्रीकृष्णचन्द्रने भी कहा है कि 'इस लोकमें बिना कर्म किये कोई नहीं रह सकता' ॥ ८३ ॥

वृक्षच्छेदे कुठारः प्रभवति यदपि प्राणिनोद्यस्तथापि
प्रायोऽन्नं तृप्तिहेतुस्तदपि निगदितं कारणं भोक्तृयत्नः।

---

* बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१३

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

प्राचीनं कर्म तद्वद्विषमसमफलप्राप्तिहेतुस्तथापि
स्वातन्त्र्यं नश्वरेऽस्मिन्न हि खलु घटते प्रेरकोऽस्यान्तरात्मा॥

वृक्षका छेदन करनेमें यद्यपि कुल्हाड़ी समर्थ है तो भी उसका प्रयोग करनेवाले किसी प्राणीकी अपेक्षा होती ही है। तृप्तिका कारण प्रायः अन्न ही है तो भी भोक्ताके प्रयत्नको उसका कारण कहा गया है। इसी प्रकार यद्यपि पूर्वकर्म शुभाशुभ फलकी प्राप्तिके हेतु होते हैं तो भी उन नाशवान् कर्मोंमें स्वतन्त्रता नहीं है, उनका भी प्रेरक अन्तरात्मा ही है॥ ८४ ॥

स्मृत्या लोकेषु वर्णाश्रमविहितमदो नित्यकाम्यादि कर्म
सर्वं ब्रह्मार्पणं स्यादिति निगमगिरः सङ्गिरन्तेऽतिरम्यम्।
यन्नासानेत्रजिह्वाकरचरणशिरःश्रोत्रसन्तर्पणेन
तुष्येदङ्गीव साक्षात्तरुरिव सकलो मूलसन्तर्पणेन ॥८५॥

वेद-वाणी यह बहुत ही सुन्दर बात कहती है कि लोकमें भिन्न-भिन्न वर्णाश्रमोंके लिये ये जितने नित्य एवं काम्यादि कर्म प्रतिपादन किये हैं वे सब ब्रह्मको ही अर्पण हो जाते हैं, जिस प्रकार नासिका, नेत्र, जिह्वा, हाथ, पाँव, शिर और कर्ण आदिमें किसीको भी तृप्त करनेसे देही आत्माको ही सन्तोष होता है जैसे मूलके सींचनेसे सारा वृक्ष हरा-भरा हो जाता है॥ ८५ ॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

यः प्रैत्यात्मानभिज्ञः श्रुतिविदपि तथा कर्मकृत्कर्मणोऽस्य
नाशः स्यादल्पभोगात्पुनरवतरणे दुःखभोगो महीयान् ।
आत्माभिज्ञस्य लिप्सोरपि भवति महाञ्शाश्वतः सिद्धिभोगो
ह्यात्मा तस्मादुपास्यः खलु तदधिगमे सर्वसौख्यान्यलिप्सोः

जो वेदवेत्ता और वैदिक कर्मोंको करनेवाला होकर भी आत्मतत्त्वको बिना जाने ही कालके गालमें चला जाता है उसके कर्म-का थोड़ा-सा भोग मिलनेके अनन्तर क्षय हो जाता है और उसे फिर इसी लोकमें लौटनेमें बड़ा कष्ट मालूम होता है । यदि आत्मज्ञ-को किसी प्रकारके भोगकी इच्छा हो तो भी उसे अणिमादि सिद्धि-रूप महान् और नित्ययोगकी प्राप्ति होती है और किसी प्रकारकी कामना न होनेपर तो आत्मज्ञान होते ही सब प्रकारके सुख प्राप्त हो जाते हैं । अतः अवश्य आत्माकी ही उपासना करनी चाहिये ॥ ८६ ॥

आत्मा ही सबका प्रकाशक और प्रेरक है

सूर्याद्यैरर्थभानं न हि भवति पुनः केवलैर्नात्र चित्रं
सूर्यात्सूर्यप्रतीतिर्न भवति सहसा नापि चन्द्रस्य चन्द्रात् ।
अग्नेरग्नेश्च किं तु स्फुरति रविमुखं चक्षुषश्चित्प्रयुक्ता-
दात्मज्योतिस्ततोऽयं पुरुष इह महो देवतानां च चित्रम् ॥८७॥

यदि अकेले सूर्य आदिसे ही पदार्थोंकी प्रतीति नहीं होती तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि सूर्यकी प्रतीति भी

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

सूर्यहीसे नहीं होती और न चन्द्रमाकी प्रतीति चन्द्रमासे या अग्निकी अग्निसे ही होती है; बल्कि ये समस्त सूर्यादि चिदात्मप्रयुक्त नेत्रसे ही स्फुरित हुआ करते हैं। अतः यह पुरुष स्वयंप्रकाश और इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओंका एक विचित्र तेज है ॥ ८७ ॥

प्राणेनाम्भांसि भूयः पिबति पुनरसावन्नमश्नाति तत्र
तत्पाकं जाठरोऽग्निस्तदुपहितबलो द्राक्छनैर्वा करोति ।
व्यानः सर्वाङ्गनाडीष्वथ नयति रसं प्राणसन्तर्पणार्थं
निःसारं पूतिगन्धं त्यजति बहिरयं देहतोऽपानसंज्ञः ।८८।

जीव प्राणकी सहायतासे ही बारंबार जल पीता और अन्न खाता है और उस प्राणवायुसे ही प्रज्वलित होकर जठरानल उसे धीरे-धीरे अथवा शीघ्रतासे पचा देता है। फिर प्राणोंकी तृप्तिके लिये व्यान उस अन्न-जलके रस (सारभाग) को सम्पूर्ण शरीरकी नाडियोंमें ले जाता है तथा अपानवायु उसके निःसार और दुर्गन्धयुक्त भागको शरीरसे बाहर निकाल देता है ॥ ८८ ॥

व्यापारं देहसंस्थः प्रतिवपुरखिलं पञ्चवृत्त्यात्मकोऽसौ
प्राणः सर्वेन्द्रियाणामधिपतिरनिशं सत्तया निर्विवादम् ।
यस्येत्थं चिद्घनस्य स्फुटमिह कुरुते सोऽस्मि सर्वस्य साक्षी
प्राणस्य प्राण एषोऽप्यखिलतनुभृतां चक्षुषश्चक्षुरेषः ॥८९॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

इस प्रकार देहमें स्थित हुआ सम्पूर्ण इन्द्रियोंका अधिपति यह पाँच वृत्तियोंवाला प्राण जिस चिद्घनकी सत्तासे अपना कार्य अहर्निश निर्विवादरूपसे किया करता है वह सबका साक्षी आत्मा मैं ही हूँ, और यही समस्त प्राणियोंके प्राणोंका प्राण और चक्षुओंका चक्षु है ॥ ८९ ॥

यं भान्तं चिद्घनैकं क्षितिजलपवनादित्यचन्द्रादयो ये
भासा तस्यैव चानु प्रविरलगतयो भान्ति तस्मिन्वसन्ति ।
विद्युत्पुञ्जोऽग्निसङ्घोऽप्युडुगणविततिर्भासयेत्किं परेशं
ज्योतिः शान्तं ह्यनन्तं कविमजममरं शाश्वतं जन्मशून्यम्

जिस एक चिद्घनके प्रकाशित होनेपर उसीके तेजसे ये भिन्न-भिन्न गतिवाले पृथिवी, जल, वायु, सूर्य और चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते हैं और उसीमें बसते भी हैं उस जगद्विधाता, ज्योतिःस्वरूप, शान्त, अनन्त, कवि, अजन्मा, अमर, नित्य और जन्मरहित परमात्माको क्या विद्युत्पुञ्ज, अग्निसमूह अथवा नक्षत्रगण प्रकाशित कर सकते हैं ? ॥ ९० ॥

जीवन्मुक्तका स्वरूप

तद्ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनुभव उदितो यस्य कस्यापि चेद्वै
पुंसः श्रीसद्गुरूणामतुलितकरुणापूर्णपीयूषदृष्ट्या ।
जीवन्मुक्तः स एव भ्रमविधुरमना निर्गतेऽनाद्युपाधौ
नित्यानन्दैकधाम प्रविशति परमं नष्टसन्देहवृत्तिः ॥९१॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

जिस किसी पुरुषको श्रीसद्गुरुकी अतुलित करुणापूर्ण अमृतमयी दृष्टिसे ऐसा अनुभव उदित हो जाता है कि 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' वही जीवन्मुक्त है। इस प्रकार अपनी अनादि उपाधिके निकल जानेसे जिसके मनका भ्रम दूर हो गया है और सन्देहवृत्ति नष्ट हो गयी है वह उस नित्यानन्दैकधाम परमात्मामें प्रविष्ट हो जाता है ॥९१॥

नो देहो नेन्द्रियाणि क्षरमतिचपलं नो मनो नैव बुद्धिः
प्राणो नैवाहमस्मीत्यखिलजडमिदं वस्तुजातं कथं स्याम्।
नाहङ्कारो न दारा गृहसुतसुजनक्षेत्रवित्तादिदूरं
साक्षी चित्प्रत्यगात्मा निखिलजगदधिष्ठानभूतः शिवोऽहम्

[जीवन्मुक्त समझता है कि] मैं देह या इन्द्रियाँ नहीं हूँ; मैं नाशवान् और अति चपल मन, बुद्धि या प्राण भी नहीं हूँ, क्योंकि ये सब वस्तुएँ तो जड हैं—ये मैं चेतन आत्मा कैसे हो सकता हूँ ? मैं अहंकार या स्त्री भी नहीं हूँ और गृह, पुत्र, सम्बन्धी, क्षेत्र तथा वित्त आदि-से भी परे हूँ। मैं तो सबका साक्षी, चेतन, प्रत्यगात्मा, सम्पूर्ण जगत्-का अधिष्ठान साक्षात् शिव (कल्याणस्वरूप) ही हूँ ॥ ९२ ॥

साक्षी साक्षी ही है

दृश्यं यद्रूपमेतद्भवति च विशदं नीलपीताद्यनेकं
सर्वस्यैतस्य दृग्वै स्फुरदनुभवतो लोचनं चैकरूपम्।
तद्दृश्यं मानसं दृक्परिणतविषयाकारधीवृत्तयोऽपि
दृश्या दृग्रूप एव प्रभुरिह स तथा दृश्यते नैव साक्षी ॥९३॥

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

यह जितना नीला, पीला आदि नानाविध विशदरूप दिखायी देता है दृश्य ही है। इस सबको देखनेवाली आँखें अनुभवसे एकरूप ही दिखायी देती हैं। किन्तु वे नेत्र भी दृश्य हैं उनका साक्षी मन है और [उसे भी देखनेवाली] विषयाकारमें परिणत हुई बुद्धि-वृत्तियाँ भी आत्माकी दृश्य हैं। वह प्रभु आत्मा तो द्रष्टा ही है—वह सर्वसाक्षी किसीके द्वारा नहीं देखा जाता ॥ ९३ ॥

रज्ज्वज्ञानाद्भुजङ्गस्तदुपरि सहसा भाति मन्दान्धकारे
स्वात्माज्ञानात्तथासौ भृशमसुखमभूदात्मनो जीवभावः ।
आप्तोक्त्याहिभ्रमान्ते स च खलु विदिता रज्जुरेका तथाहं
कूटस्थो नैव जीवो निजगुरुवचसा साक्षिभूतः शिवोऽहम् ॥

जिस प्रकार रज्जुका अज्ञान होनेसे ही मन्द अन्धकारमें उसके स्थानमें सहसा सर्प प्रतीत होने लगता है उसी तरह अपने स्वरूपका ज्ञान न होनेसे ही आत्माको यह अत्यन्त दुःखद जीवभाव प्राप्त हुआ है। फिर किसी प्रामाणिक पुरुषके कहनेसे जब उस सर्पभ्रमकी निवृत्ति हो जाती है तो वहाँ अपनी पूर्वपरिचित रज्जु ही दिखायी देने लगती है। उसी प्रकार अपने गुरुदेवके उपदेशसे जब जीवका अज्ञान निवृत्त हो जाता है तो उसे स्पष्ट मालूम होने लगता है कि मैं जीव नहीं बल्कि सबका साक्षी और कूटस्थ (निर्विकार) शिव ही हूँ ॥ ९४ ॥

किं ज्योतिस्ते वदस्वाहनि रविरिह मे चन्द्रदीपादि रात्रौ
स्यादेवं भानुदीपादिकपरिकलने किं तव ज्योतिरस्ति ।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

चक्षुस्तन्मीलने किं भवति च सुतरां धीर्धियः किं प्रकाशे
तत्रैवाहं ततस्त्वं तदसि परमकं ज्योतिरस्मि प्रभोऽहम् ।९५।

[तत्र गुरुने पूछा—] 'बताओ तो तुम्हें दिनके समय पदार्थोंको दिखानेवाली कौन-सी ज्योति है ?' [इसपर शिष्य बोला—] 'हमें दिनमें सूर्य और रात्रिके समय चन्द्रमा तथा दीपक प्रकाश प्रदान करते हैं ।' [गुरु—] 'अच्छा, इन सूर्य और चन्द्रमाको देखनेमें तुम किस ज्योतिसे काम लेते हो ?' [शिष्य—] 'नेत्रसे।' [गुरु—] 'और उनके मुँद जानेपर ?' [शिष्य—] 'बुद्धिसे ।' [गुरु—] 'और बुद्धिको प्रकाशित करनेका तुम्हारे पास क्या साधन है ?' [शिष्य—] 'उसका प्रकाशक तो मैं ही हूँ' [गुरु—] 'ठीक है, इससे तुम ही सम्पूर्ण ज्योतियोंमें उत्कृष्ट परम ज्योति हो ।' [शिष्य—] 'हाँ भगवन् ! मैं ही हूँ' ॥ ९५॥

जीवन्मुक्तकी स्थिति

कञ्चित्कालं स्थितः कौ पुनरिह भजते नैव देहादिसङ्गं
यावत्प्रारब्धभोगं कथमपि स सुखं चेष्टतेऽसङ्गबुद्ध्या ।
निर्द्वन्द्वो नित्यशुद्धो विगलितममताहङ्कृतिर्नित्यतृप्तो
ब्रह्मानन्दस्वरूपः स्थिरमतिरचलो निर्गताशेषमोहः ॥९६॥

जो पुरुष इस प्रकार जीवन्मुक्त हो गया है वह कुछ काल इस लोकमें स्थित रहनेपर भी इस देहादि संघातमें आत्मबुद्धि नहीं करता । वह अपना प्रारब्धभोग समाप्त होनेतक किसी प्रकार आनन्दपूर्वक असंगबुद्धिसे व्यवहार करता रहता है । ममता और

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

अहंकारके लीन हो जानेसे वह निर्द्वन्द्व नित्यशुद्ध और नित्यतृप्त हो जाता है तथा सब प्रकारका मोह नष्ट हो जानेके कारण ब्रह्मानन्द-स्वरूप, स्थिरबुद्धि और अपने निश्चयमें अटल रहता है ॥ ९६ ॥

जीवात्मब्रह्मभेदं दलयति सहसा यत्प्रकाशैकरूपं
विज्ञानं तच्च बुद्धौ समुदितमतुलं यस्य पुंसः पवित्रम् ।
माया तेनैव तस्य क्षयमुपगमिता संसृतेः कारणं या
नष्टा सा कार्यकर्त्री पुनरपि भविता नैव विज्ञानमात्रात् ॥

जो जीवात्मा और परमात्माके भेदको सहसा कुचल डालता है वह एकमात्र प्रकाशस्वरूप, अतुलित एवं परम पवित्र विज्ञान जिस पुरुषके शुद्ध अन्तःकरणमें प्रकट होता है, उसकी जन्म-मरणरूप संसारकी कारणरूपा सम्पूर्ण माया उसीके द्वारा नष्ट कर दी जाती है और आभास-मात्र होनेके कारण वह नष्ट हुई माया फिर कभी कार्यकारिणी नहीं हो सकती ॥ ९७ ॥

विश्वं नेति प्रमाणाद्विगलितजगदाकारभानस्त्यजेद्वै
पीत्वा यद्वत्फलाम्भस्त्यजति च सुतरां तत्फलं सौरभाढ्यम्
सम्यक्सच्चिद्घनैकामृतसुखकवलास्वादपूर्णो हृदासौ
ज्ञात्वा निःसारमेवं जगदखिलमिदं स्वप्रभः शान्तचित्तः ॥

'यह नानारूप प्रपञ्च है ही नहीं' इस तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले प्रमाणोंसे इस जगदाभासके विलीन हो जानेपर ज्ञानी जन इसकी आस्था छोड़ देते हैं, जैसे नारियल आदि सुगन्धित फलका जल

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

पीकर उसे फेंक दिया जाता है। फिर इस सच्चिद्घनानन्दरूप अमृतके घूँटोंका भली प्रकार आस्वादन कर वे पूर्णहृदय हो जाते हैं और इस सम्पूर्ण जगत्को सारहीन समझकर स्वयंप्रकाश और शान्तचित्तसे स्थित रहते हैं ॥ ९८ ॥

क्षीयन्ते चास्य कर्माण्यपि खलु हृदयग्रन्थिरुद्भिद्यते वै
छिद्यन्ते संशया ये जनिमृतिफलदा दृष्टमात्रे परेशे ।
तस्मिंश्चिन्मात्ररूपे गुणमलरहिते तत्त्वमस्यादिलक्ष्ये
कूटस्थे प्रत्यगात्मन्यखिलविधिमनोऽगोचरे ब्रह्मणीशे ।९९।

उस चिन्मात्र, गुणरूप मलसे रहित, तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे लक्षित, निर्विकार, प्रत्यगात्मा, सब प्रकारके विधि-वाक्य और मन आदिके अविषय, ब्रह्म और सम्पूर्ण जगत्के नियन्ता परमेश्वरके दृष्टिगोचर (ज्ञानरूप नेत्रोंके विषय) होते ही जीवके सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं, उसकी अहंकाररूप हृदयग्रन्थि टूट जाती है और जन्ममरणरूप फल देनेवाले सब प्रकारके संदेह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ ९९ ॥

भगवच्चिन्तनका विधान

आदौ मध्ये तथान्ते जनिमृतिफलदं कर्ममूलं विशालं
ज्ञात्वा संसारवृक्षं भ्रममदमुदिताशोकतानेकपत्रम् ।
कामक्रोधादिशाखं सुतपशुवनिताकन्यकापक्षिसंघं
छित्त्वासङ्गासिनैनं पटुमतिरभितश्चिन्तयेद्वासुदेवम् ।१००।

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

कर्म ही जिसकी जड़ है तथा भ्रम, मद, मुदिता (प्रसन्नता) और शोकरूप अनेकों पत्ते एवं काम-क्रोधादि शाखाएँ हैं और जिसपर पुत्र, पशु, पत्नी एवं कन्या आदि बहुत-से पक्षी रहते हैं उस संसाररूप विशाल वृक्षको आदि, मध्य और अन्तमें केवल जन्ममरणरूप फल देनेवाला ही जानकर कुशलमति पुरुषोंको इसे असंगतारूप खड्गसे काटकर निरन्तर श्रीवासुदेवका चिन्तन करना चाहिये ॥ १०० ॥

स्वात्माभिवन्दन

जातं मय्येव सर्वं पुनरपि मयि तत्संस्थितं चैव विश्वं
सर्वं मय्येव याति प्रविलयमिति तद्ब्रह्म चैवाहमस्मि ।
यस्य स्मृत्या च यज्ञाद्यखिलशुभविधौ सुप्रयातीह कार्यं
न्यूनं सम्पूर्णतां वै तमहमतिमुदैवाच्युतं सन्नतोऽस्मि १०१

अहो ! यह सम्पूर्ण जगत् मुझहीमें तो उत्पन्न हुआ है तथा यह मुझहीमें स्थित है और मुझहीमें लीन भी हो जायगा । इस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति और लयका आधारभूत वह ब्रह्म मैं ही तो हूँ । जिसके केवल स्मरणमात्रसे यज्ञादि सम्पूर्ण शुभ कार्योंकी कमी पूर्ण हो जाती है उस अपने अच्युतस्वरूपको मैं अति आनन्दपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥ १०१ ॥

इति श्रीमद्भगवच्छङ्कराचार्यकृता शतश्लोकी समाप्ता

श्रीपरमात्मार्पणमस्तु

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.

Digitization by eGangotri-South Center

CC-0. In Public Domain. Cuddalore Collection. TN.